वेदोऽखिलो धर्ममूलम्

वेद प्रकाश

मासिक पत्र (6-7 प्रतिमाह) मूल्यः 5 रुपये (30/-वार्षिक) अक्टूबर 2018

कुल पृष्ठ संख्या 90, वजनः 95 ग्राम, प्रकाशन तिथिः 4 अक्टूबर 2018

अक्टूबर 2018 का अंक विशेषांक होगा

अवैदिक मतों पंथो से वैदिक धर्म का

मौलिक भेद

प्रा. राजेन्द्र 'जिज्ञासु'

ऋग्वेद

यजुर्वेद

सामवेद

अथर्ववेद

अन्तर्राष्ट्रीय आर्य महासम्मेलन-2018 के उपलक्ष्य में पुनः प्रकाशित होने वाला साहित्य

गंगा ज्ञान सागर-1	सं. राजेन्द्र 'जिज्ञासु'	रु. 500.00
गंगा ज्ञान सागर-2	सं. राजेन्द्र 'जिज्ञासु'	रु. 500.00
गंगा ज्ञान सागर-3	सं. राजेन्द्र 'जिज्ञासु'	रु. 500.00
गंगा ज्ञान सागर-4	सं. राजेन्द्र 'जिज्ञासु'	रु. 500.00

पूज्य पं. गंगाप्रसाद उपाध्याय जी के साहित्य, लेखों तथा व्याख्यानों को संग्रहित करके 'गंगा ज्ञान सागर' के नाम से धर्मप्रेमी जनता को भेंट किया जा रहा है। आर्यसमाज के इतिहास में यह सर्वाधिक लोकप्रिय ग्रन्थमाला है। यह इस ग्रन्थमाला का तृतीय संस्करण है। तीन अनादि पदार्थों से लेकर जन्म, मृत्यु, मोक्ष, पाप-पुण्य, परोपकार, जप, तप, सन्तोष, दया, अहिंसा, तुलनात्मक धर्म अध्ययन पर जितनी ठोस सामग्री इस एतिहासिक ग्रन्थमाला में मिलेगी इतनी और कहाँ?

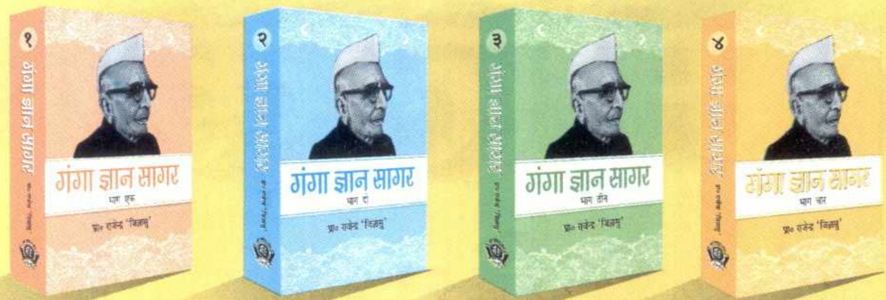

बहुत दिनों बाद पुनः प्रकाशित कुछ उपयोगी पुस्तकें

सत्यार्थप्रकाश स्थूलाक्षरी	महर्षि दयानन्द सरस्वती	550.00
महर्षि दयानन्द चरित	बाबू देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय	550.00
स्वाध्याय संदीप	स्वामी वेदानन्दतीर्थ	400.00
स्वाध्याय संदोह	स्वामी वेदानन्दतीर्थ	400.00
पौराणिक पोल प्रकाश	पं. मनसाराम वैदिक तोप	450.00
संस्कार समुच्चय	पं. मदन मोहन विद्यासागर	350.00
ईश्वर का वैदिक स्वरूप	पं. सुरेशचन्द्र वेदालंकार	40.00
वैदिक गणपति	श्री मदन रहेजा	85.00
वैदिक दर्शन	पं. चमूपति एम. ए.	60.00
पं. रामचन्द्र देहलवी व उनका वैदिक दर्शन	प्रा. राजेन्द्र 'जिज्ञासु'	200.00
Light of Truth	Dr. Chiranjeeva Bharaddwaja	300.00

वेदप्रकाश

संस्थापक : **स्वर्गीय श्री गोविन्दराम हासानन्द**

वर्ष ६८ अंक ३ वार्षिक मूल्य : तीस रुपये, एक प्रति ५ रुपये, अक्टूबर, २०१८

सम्पा० **अजयकुमार** पूर्व सम्पादक : स्व० **स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती**

अन्तःपथ

मौलिक भेद : पृ० 3-88

–प्रा. राजेन्द्र 'जिज्ञासु'

प्राक्कथन : 'मौलिक भेद'

लेखक :

पूज्यपाद स्वामी सत्यप्रकाश जी सरस्वती

(पूर्व डॉ. सत्यप्रकाश जी D.Sc., F.N.I)

प्रा० श्री राजेन्द्र जिज्ञासु लब्ध प्रतिष्ठित लेखक हैं, और उनकी लेखनी से लिखी गई मौलिक भेद पुस्तक आर्यसमाज के दार्शनिक दृष्टिकोण को स्पष्ट शब्दों में व्यक्त करने में अनूठी है। ईश्वर को मानने वाले अनेक वाद हैं, स्तुति, प्रार्थना, उपासना इनके प्रति भी बहुतों की निष्ठा है।

सुख-दुःख, पाप-पुण्य, स्वर्ग-नरक, ये भी साहित्य के पुराने परिचित शब्द हैं किन्तु महर्षि दयानन्द के साहित्य में इन शब्दों द्वारा जिन दार्शनिक सिद्धान्तों की अभिव्यक्ति हुई है, उनका स्रोत प्राचीनतम होते हुए भी नवीनतम है, और बुद्धिवादी युग में इस अभिव्यक्ति को लेकर ही हम आगे बढ़ सकते हैं। आप इस पुस्तक को पढ़ें और आपकी समझ में आ जावेगा कि महर्षि के सिद्धान्तों में कितनी गम्भीरता है, और दूसरों की मान्यताओं से इसमें कितना वैभिन्य। महर्षि का दृष्टिकोण आपको नवीन प्रतीत होगा, यह भी एक परम सत्य है कि यही हमारा प्राचीनतम दृष्टिकोण है।

वर्ष 2017-18 के प्रकाशन

Mother's Gift to the Young *by* **Kanchan Arya Rs. 120.00**

The book is written for the spiritual upliftment and character building of the Youngs. The authoress has explained the truth of the human life in the form of letters from a mother to her children. The mother has tried by all possible means to save and protect the children from physical, spiritual and social downfall.

मैं दयानन्द बोल रहा हूँ   डॉ. चन्द्रशेखर लोखण्डे   रु.95.00

स्वामीजी द्वारा लिखित संपूर्ण ग्रन्थों एवं जीवन चरितों में से लगभग 500 अमृत तुल्य संवचनों को एक जगह लाने का प्रयास किया गया है। विद्यार्थियों एवं शोधार्थियों के लिए उपयोगी।

अथतो धर्म जिज्ञासा   श्री वेद प्रकाश   रु. 225.00

में धर्म के विषय में फैली भ्रान्तियों और असमंजस की स्थिति का निराकरण एवं इसके यथार्थ स्वरूप का उद्घाटन आवश्यक है, जिसकी चर्चा इस पुस्तक में तथ्यपरक एवं तार्किक ढंग से की गयी है। भौतिक तथ्यों एवं आँकड़ों का उल्लेख करके विषय को अधिक रोचक एवं प्रामाणिक बनाया गया है।

वैदिक मान्यताओं का वैज्ञानिक एवं व्यावहारिक विवेचनः

डॉ. राजपाल सिंह   रु. 70.00

इस पुस्तक में प्रमाण और उसके प्रकार, जीवन के लिए पंचतत्व का महत्व, उर्जा एवं प्रधान प्रकृति (सांख्य दर्शन) में समानता, यज्ञ पर प्रयोग एवं उसकी उपयोगिता, आत्मा का अस्तित्व, उसका अलिंगी गुण, ईश्वर की वैज्ञानिक पुष्टि, साधना हेतु धारणा की आवश्यकता तथा उसके विकल्प, वैदिक काल में नारी का स्थान तथा रामायण एवं महाभारत की घटनाओं पर तर्कसंगत विचार प्रस्तुत किये गये हैं।

The Original Philosopy of Yoga *by* **Dr. Tulsiram Rs. 200.00**

The original philosophy of yoga is revealed in the Vedas. Maharshi Patanjali, through his knowledge and practice, collected the Vedic revelations from the Samhitas and composed them in a systematic treatise which we know today as Yoga Darshan.

Chapter-1 takes care of different kinds of Samadhi: Vitarka, Vichara, Ananda, Asmita, Sabija and Nirbija. Chapter-2 takes care of the human problem of suffering (dukha), which must be eliminated (Heya). Chapter-3 goes into the high-ways and bye-ways of yogic powers, often described as Super-normal, even Super-natural. Chapter-4 describes the psycho-dynamics of living and spiritual realisation and sublimation of the self (the atma).

द्वितीय संस्करण की भूमिका

मौलिक भेद का प्रथम संस्करण 1968 में प्रकाशित हुआ। दो वर्षों के भीतर ही समाप्त भी हो गया। Radical Variations के नाम से आचार्य श्री नरेन्द्र भूषण जी व श्रीयुत तरमेमकुमार जी आर्य ने इसका अंग्रेज़ी अनुवाद 1972 ई० में केरल से प्रकाशित करवाया। वह भी अब समाप्त होने वाला है। मौलिक भेद के द्वितीय संस्करण के प्रकाशन की माँग बढ़ती गई। 1972 ई० में इसे प्रकाशित करने की कुछ व्यवस्था की गई। पूज्यवाद स्वामी श्री सत्यप्रकाश जी ने 22-2-1972 ई० को अबोहर में इसका प्राक्कथन भी लिख दिया परन्तु किन्हीं कारणों से इसका प्रकाशन रुका रहा।

मूर्धन्य विद्वानों, लेखकों व पाठकों ने इसका स्वागत किया। हम सब के आभारी हैं। प्रभु कृपा व पूज्य महात्माओं के आशीर्वाद से अब इसका द्वितीय संशोधित व परिवर्द्धित संस्करण पाठकों को भेंट करते हुए हमें हर्ष हो रहा है। आर्य युवक समाज अबोहर इसके प्रकाशन का प्रशंसनीय पुरुषार्थ कर रहा है।

श्रद्धानन्द बलिदान पर्व
2032 वि० संवत्

विनीतः—
राजेन्द्र 'जिज्ञासु'

पाँचवें संस्करण की भूमिका

'मौलिक भेद' पुस्तक का यह पाँचवाँ संस्करण पाठकों के हाथों में है। यदि विचारपूर्वक देखा जाय तो यह इसका छठा संस्करण है। पहले-पहल यह सामग्री परोपकारी, दैनिक प्रताप (उर्दू), साप्ताहिक वैदिक धर्म (उर्दू) में प्रकाशित हुई।

आर्य जगत् के लेखनी सम्राट मेरे साहित्य पिता पूज्यपाद श्री पं० गंगाप्रसाद जी उपाध्याय ने स्वयं इसकी कुछ प्रतियाँ मँगवाने के लिए मनीआर्डर भेजा। इसके प्रकाशन पर गद्गद् होकर श्रीमान् राधे मोहन जी को कहा, "आज जिसे एक छोटा लेखक समझा जा रहा है, भविष्य का लेखराम यही है।"

मैं पं० लेखराम के चरणों की धूलि हूँ। उनका चरणानुरागी हूँ। उनके नाम की लोरियाँ मुझे दी गईं। इन लोरियों ने मुझे यहाँ तक पहुँचा दिया। उपाध्याय जी के यह उद्गार तभी मुझे एक अन्तर्देशीय द्वारा प्राप्त हो गये। वह पत्र अब भी मेरे पास है। प्रथम बार यह बात प्रकट कर रहा हूँ। इस पत्र ने मुझे आज तक बहुत ऊर्जा दी है।

जिस लघु पुस्तक पर मेरे साहित्य पिता ने वैदिक साहित्य की सबसे बड़ी डिग्री (पं० लेखराम) मुझे दे दी। मेरी वही प्यारी पुस्तक संशोधित व परिवर्द्धित रूप में आपके हाथों में है। अनेक विद्वानों व सैकड़ों स्वाध्यायशील पाठकों ने इसकी भरपूर प्रशंसा करते हुये मुझे पत्र लिखे। इसकी निरन्तर माँग बनी रही।

मेरे द्वारा लिखित, अनूदित व सम्पादित सभी पुस्तकों के प्रकाशन का अधिकार स्वामी स्वतन्त्रतानन्द शोध संस्थान, अबोहर को प्राप्त है। इसमें कई नये अध्याय बढ़ा दिये हैं। अंग्रेज़ी में तो यह छप ही चुकी है। इसके कुछ अंश अनूदित होकर और भी कई भाषाओं में छप चुके हैं। मुझे पूर्ण आशा है कि मेरी इस प्यारी कृति का आने वाली एक

दशाब्दी में कई भारतीय भाषाओं में अनुवाद छप जायेगा। श्री स्वामी सत्यप्रकाश सरीखे विलक्षण विद्वान् ने और वेदज्ञ स्वामी धर्मानन्द जी ने जिस पुस्तक पर आर्शीवादों की वर्षा की वह अवश्य लाखों की संख्या में छपेगी। इसके अनेक संस्करण मेरे जीवन काल में ही छपेंगे। ऐसा मुझे दृढ़ विश्वास है।

वेदनिष्ठ श्री डॉ० परमानन्द जी के स्नेह सूत्र में बंधकर मैं मध्य प्रदेश की यात्रा पर निकला। इसी यात्रा में भ्रमण व प्रचार करते हुये रायपुर, भिलाई व दुर्ग में इसके पाँच छह नये अध्याय लिख दिये। श्री डॉ० परमानन्द जी, श्रीमान् रोहित नरूला जी के घर पर इस कार्य को पूरा किया।

मेरे साहित्य के नियमित पाठक इसमें कई ऐसी युक्तियाँ व प्रमाण पायेंगे जो मेरी अन्य पुस्तकों में भी हैं। यह स्वाभाविक ही है। कई प्रमाण व युक्तियाँ किसी अन्य लेखक की पुस्तक में नहीं मिलेंगे। ये नये-नये प्रमाण इस पुस्तक की एक विशेषता है।

विनीत:-

05.12.1999
दुर्ग- म० प्र०

प्रा० राजेन्द्र 'जिज्ञासु'
वेद सदन,
अबोहर-0151116
दूरभाष: 01634-26403

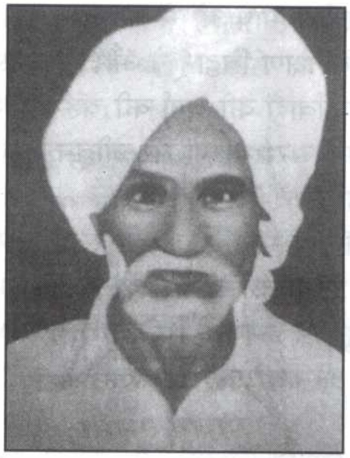

पूज्य पिता श्री जीवन मल जी आर्य

समर्पण

मैं
अपनी इस पुस्तक को
अनादि ईश्वर के अनादि ज्ञान
वेद
के लिए अडिग श्रद्धा रखने वाले
अपने पूज्य पिता
श्री जीवन मल की
पावन स्मृति
में
समर्पित करता हूँ

–राजेन्द्र 'जिज्ञासु'

'स्मृति सुमन'

'श्रत् ते दधाम्।'–सामवेद

यह पुस्तक मेरे पूज्य पिता श्री महाशय जीवन मल जी की मधुर स्मृति में प्रकाशित की जा रही है। वह कोई विद्वान् नहीं थे, नेता नहीं थे और न ही वह किसी सभा संस्था के पद–अधिकारी थे। वह थे एक ग्रामीण आर्यसमाजी। उनका जन्म पोष मास विक्रम संवत् 1934 में मालोमहे ज़िला स्यालकोट (पश्चिमी पंजाब) में हुआ। वह केवल चालीस दिन के थे जब उनके मान्य पिता श्री धनीराम जी का देहान्त हो गया। उनका लालन–पालन उनकी माता श्रीमती ज्वाली देवी द्वारा हुआ। उर्दू फ़ारसी की शिक्षा पाँचवी श्रेणी तक प्राप्त की। उनकी आगे पढ़ने की आकाँक्षा पूर्ण न हो सकी।

युवा अवस्था में उनको वैदिकधर्मी बनने का गौरव प्राप्त हुआ। उन दिनों वैदिक धर्म को ग्रहण करना बड़े साहस का कार्य था। आर्यों का अपने बेगाने सब विरोध करते थे। फिर भी अपने ग्राम में वह सबसे पहले आर्यसमाजी बने। गाँव के सब हिन्दू आर्यसमाज में सम्मिलित हो गए। गाँव में सबके पुरुषार्थ से आर्यसमाज का विशाल एवं भव्य मन्दिर निर्माण किया गया। मैंने उत्तर और दक्षिण भारत में किसी कस्बा में भी कहीं वैसा समाज मन्दिर नहीं देखा। उस गाँव के आर्यसमाज की अत्यन्त गौरवपूर्ण चर्चा आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब व आर्यसमाज के इतिहास में भी आती है।

यद्यपि मेरे पिता जी अल्प शिक्षित थे तथापि स्वाध्यायशील थे। उनका स्वाध्याय बड़ा विस्तृत व गहरा था। वह नियमपूर्वक स्वाध्याय करते थे। ऋषिकृत ग्रन्थों में सत्यार्थप्रकाश, ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका, संस्कार विधि, आर्याभिविनय आदि को उन्होंने कई बार पढ़ा। ऋषिकृत ग्रंथों के अतिरिक्त स्वामी दर्शनानन्द जी महाराज, श्री स्वामी वेदानन्द

जी, म० नारायण स्वामी जी महाराज, धर्मवीर लेखराम जी, मुनिवर गुरुदत्त जी, अमर धर्मवीर स्वामी श्रद्धानन्द जी, श्री भाई परमानन्द जी, वीतराग स्वामी सर्वदानन्द जी महाराज, राष्ट्रवीर ला० लाजपतराय, श्री पं० चमूपति जी, आचार्य रामदेव जी, श्री पं० गंगाप्रसाद जी न्यायमूर्ति, श्री पं० गंगाप्रसाद जी उपाध्याय, श्री पं० भगवद्दत जी, श्री स्वामी ब्रह्म मुनि जी, पं० मनसाराम जी, पं० रघुनन्दन शर्मा जी आदि सभी प्रमुख आर्य विद्वानों का हिन्दी, उर्दू साहित्य उन्होंने ध्यान पूर्वक पढ़ा। मुसलमानों के विभिन्न सम्प्रदायों व ईसाइयत का भी पर्याप्त अध्ययन किया। उनकी माता का जन्म सिख परिवार में हुआ था और वह सिख थी। अत: मेरे पिता जी सिख मत सम्बन्धी अच्छी जानकारी रखते थे। प्रथम विश्व युद्ध के पश्चात् जब प्लेग फैली तो उन्होंने रोगियों की बहुत सेवा की। मृतकों के दाहकर्म कराने में वह सब से आगे रहे। उनकी इस सेवा का गाँव में अच्छा प्रभाव पड़ा। उनकी संकल्प-शक्ति असाधारण थी। एक बार उनको पागल कुत्ते ने काटा। वह चाँदी का रुपया लेकर उसको कोयलों पर गर्म करते, जब रुपया अंगारों के समान लाल हो जाता तो अपनी टाँग पर रखते। इस प्रकार जहाँ कुत्ते ने काटा था वहाँ सारा मांस स्वयं ही जला दिया।

जब गाँव का समाज मन्दिर बनने लगा तो एक कबर का वृक्ष भवन की लकड़ी के लिय ख़रीदा गया। उस वृक्ष को सब से पहला कुल्हाड़ा आप ने मारा। जब उस वृक्ष को काट कर गड्डे में डाल कर गाँव में लाया जा रहा था तो आपका पाँव गड्डे के नीचे आकर कुचला गया। आपको कई दिन कष्ट रहा परन्तु आप ने कभी आह न की ताकि लोगों में कहीं यह मिथ्या भ्रम न फैल जाय कि मरे हुए पीर के अभिशाप से उनका पाँव कुचला गया है।

आप 'जय-जय पिता परम आनन्द दाता'

'तुम हो प्रभु चाँद मैं हूँ चकोरा'

'तेरी शरण की ओट गही' आदि भजनों को बड़ा पसन्द करते थे। आर्यसमाज लेखराम नगर (कादियाँ) में जब प्रसिद्ध आर्य विद्वान् श्री पं० गंगाराम जी ये भजन गाते तो बड़ी श्रद्धा भक्ति से इसका आनन्द लूटते। आर्यसमाज के पुराने उपदेशक दिवंगत श्री पं० हीरानन्द जी

(जिन्होंने काशी में ऋषि जी पर ईंट पत्थर वर्षाये थे) का सत्संग उनको वर्षो प्राप्त रहा। हमारा गाँव मुसलमान सय्यदों का गढ़ था। आर्य समाज की कृपा से मेरे पिता जी भूत-प्रेत, कबर, पीर, जादू टोने आदि पाखण्डों से सर्वथा निर्भय थे। कोई व्यसन भी न था।

वेद में आता है,

इच्छन्ति देवाः सुन्वन्तं न स्वप्नाय स्पृह्यन्ति।
यन्ति प्रमादम् अतन्द्राः॥[1]

देव प्रमादी से प्यार नहीं करते। श्रम करने वाले को चाहते हैं। मेरे पिता जी ने आजीवन श्रम को जीवन का शृंगार बनाया। 1958 में गुरुद्वारा सिगरेट केस में पुलिस द्वारा मेरी अमानुषिक पिटाई पर लेखराम नगर में श्री मेहर चन्द पोस्टमास्टर को उन्होंने कहा यदि मैं श्रम न करता तो जिज्ञासु भी पुलिस की मार से बचकर न आता।

पोष मास संवत् 2020 (23-12-1962 ई०) को उनका नरवाना (हरियाणा) में देहान्त हुआ।

मेरे लिए उनकी सबसे बड़ी देन ऋषि दयानन्द की पावन वैदिक विचारधारा ही है। मेरी सारी दुर्बलताओं की उपेक्षा कर वह इस बात पर सन्तोष व गौरव अनुभव करते थे कि मुझे ऋषि मिशन की धुन है। मैं भी समझता हूँ कि यदि पिता जी ने वैदिक ज्योति न दी होती तो मैं विद्यानुरागी न होता। व्यसनों में फँसा होता। न जाने मैं किस गर्त में होता। जीवन में यदि कुछ पाया है तो इस जीवन दायनी विचारधारा के कारण पाया है—जो मुझे मेरे पिता जी ने घुट्टी में पिलाई। जीवन की उसी सर्वश्रेष्ठ निधि को उन्हीं की प्रेरणा से लुटाने लगा हूँ। आज देश विदेश से छपने वाले अनेक सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थों में मेरा जीवन-परिचय छप चुका है। मेरे माता-पिता आज होते तो उन्हें इससे बहुत प्रसन्नता होती।

—राजेन्द्र 'जिज्ञासु'

---

1. ऋ० 8-2-18

विषय सूची

	पृष्ठ-संख्या
प्राक्कथन	3
प्रथम संस्करण की भूमिका	4
द्वितीय संस्करण की भूमिका	5
पाचवें संस्करण की भूमिका	6
स्मृति सुमन	9
मैं किस मुख करूँ बखान ईश तेरी महिमा	15
पहला अध्याय	16
(1) ईश चर्चा	16
(2) ईश्वर का स्वरूप	16
(3) ईश्वर पर अश्रित नही	17
(3) ईश्वर नियन्ता है	18
(4) ईश्वर न सब कुछ करता है, न सब कुछ कराता है	18
(5) ईश्वर का ज्ञान व कर्म	19
दूसरा अध्याय	21
(1) परमेश्वर तो परमेश्वर ही है	21
(2) उत्तर की खोज में भटकते प्रश्न-	22
(3) अवतार शब्द किसने घड़ा	22
तीसरा अध्याय	25
(1) ईश्वरीय ज्ञान	25
(2) वेद का प्रकाश हुआ, वेद नाज़िल नहीं हुआ	26
(3) पैग़म्बरवाद व ईश्वरीय ज्ञान	26

(4) सृष्टि नियम व ईश्वरीय ज्ञान	26
(5) दैनिक जीवन में ज्ञान पहले कर्म पीछे	27
(6) परिवर्तनशील जगत् के नियम अटल हैं	28
(7) सत्य नित्य है, नूतन भी है	29
(8) बाईबल में वेद की महिमा	29
चौथा अध्याय	**33**
(1) किसने भेजा? किसको भेजा?	33
पाँचवाँ अध्याय	**37**
(1) त्रैतवाद	37
(2) महान् वैज्ञानिक न्यूटन का मत	38
(3) महान् विद्वान् पं० गुरुदत्त विद्यार्थी का कथन	40
(4) सर्वज्ञता का अर्थ क्या है?	41
(5) अद्वैतवादी से बड़ा शून्यवादी	42
(6) माया बिन ब्रह्म का कार्य नहीं चलता	42
(7) किसान खेती करता है, स्वप्न में नहीं जागते हुए	43
(8) राष्ट्ररक्षा, उपकार व सुधार कार्य जागने वाले करते हैं स्वप्न वाले नहीं	43
(9) पुरुष एक या अनेक?	46
छठा अध्याय	**48**
(1) जगत् का केन्द्र-बिन्दु	48
सातवाँ अध्याय	**52**
(1) ईशोपासना	52
(2) सारा संसार जानता है।	53
आठवाँ अध्याय	**58**
(1) पाप और पाप का फल	58
(2) वेद का पवित्रता पर बल	60

(3) प्रार्थना का फल	60
(4) जीव की स्वतन्त्रता	63
(5) वेदादेश	67
(6) भाग्यवाद कर्मफल का शत्रु है	68
(7) परिस्थिति व अन्त: स्थिति	69
(8) वैदिक आशावाद	70
(9) दर्शन में जीव की कर्म करने की स्वतन्त्रता	71
(10) निर्वाचन व स्वतन्त्रता	71
(11) दया और न्याय	72
(12) नैतिक व अनैतिक में भेद	72
नवाँ अध्याय	**74**
(1) कर्म फल की व्यवस्था	74
(2) जीव पाप क्यों करता है?	78
(3) एक अन्य भ्रान्ति	79
(4) सृष्टि का स्रष्टा	80
दसवाँ अध्याय	**81**
(1) हम और हमारा प्रभु	81
ग्यारहवाँ अध्याय	**85**
(1) स्वर्ग में कौन? नरक में कौन?	85
मौलिक भेद पर कुछ सम्मतियाँ	**87**

मैं किस मुख करूँ बखान ईश तेरी महिमा

मनुष्य मात्र को यह जान लेना चाहिए कि ईश्वर न तो प्रयोग (Experiment) करता है और न ही संशोधन (Modification) करता है। सब जीव प्रयोग कर करके सीखते व उन्नति करते हैं। आज जिस प्रकार के भवन हैं, चालीस वर्ष पूर्व ऐसे भवन कहाँ थे? न ही ऐसे वस्त्र, शस्त्र, विमान, जलयान व कलें थीं। मनुष्य प्रयोग कर-करके अपनी कृतियों का विकास करता रहता है।

मनुष्य अपनी कृतियों के विकास के लिये—प्रत्येक कार्य में संशोधन करता रहता है। परिवर्तनशील जगत् में मनुष्य के बनाये कड़े व कठोर नियमों (Laws) में भी परिवर्तन होता रहता है परन्तु प्रभु ने मनुष्य की, गाय की, कुत्ते की, घोड़े की, हाथी की, तोते की आकृति में, जल, वायु व अग्नि के निमयों में लेशमात्र भी संशोधन नहीं किया क्यों?

इसलिये कि प्यारा प्रभु सर्वज्ञ है, पूर्ण है, सर्वव्यापक है। वह सर्वव्यापक है तभी तो सर्वज्ञ है। सर्वज्ञ है, तभी तो पूर्ण (Perfect) है। इतना जान लेने से जगत् में बहुत सा भ्रमोच्छेदन हो जायेगा।

ईश्वर के नियम अटल हैं। यह कौन नहीं जानता? विज्ञान सृष्टि नियमों की अटलता को मान कर ही चलता है। जब ईश्वर के सब नियम अटल व निर्दोष हैं तो सृष्टि में आत्मोन्नति, सुख शान्ति की प्राप्ति के नियम भी अटल ही मानने पड़ेंगे। प्रभु अपने नियम निरस्त करके नये नियम घड़ता रहता है, यह सोच एक भ्रान्ति है। यह अन्धविश्वास है। यह भी एक ज्ञान-घोटाला है।

पहला अध्याय
ईश चर्चा

वैदिक धर्म व मत मतान्तरों में मौलिक भेद क्या है? इस पर मैं पर्याप्त समय से विचार करता आया हूँ। मुझे जो कुछ समझ में आया है वह विचारशील सज्जनों की भेंट करता हूँ।

प्रथम मौलिक भेद यह है कि मत-मतान्तर अपनी मान्यताओं को मानते तो हैं उन पर मनन नहीं करना चाहते। मनन करते ही नहीं। मनन का तो अवैदिक मतों में कोई महत्त्व ही नहीं। मतों में हृदय के लिए तो स्थान है मस्तिष्क के लिए नहीं।

ईश्वर का स्वरूप

ईश्वर के ही स्वरूप को लीजिये। मत मतान्तरों ने ईश्वर पूजा पर बल तो बहुत दिया परन्तु ईश्वर का स्वरूप क्या है इस पर विचार ही नहीं किया जाता। इसका परिणाम यह है कि मूल में ही भूल हो जाने से मानव समाज का अहित व अनिष्ट हो रहा है।

इस्लाम और ईसाई मत में ईश्वर को एक देशी माना गया है। पौराणिक भी ऐसी मान्यता रखते हैं। ऐसा मानते हुए भी सब मतवादी लोग संसार में ईश्वर प्राप्ति के लिये पूजा उपासना पर बल देते हैं। यह मतवादी लोग भगवान् को चौथे या सातवें आकाश, क्षीर सागर व कैलाश पर्वत पर मानते हैं। **फिर भला वह यहाँ कैसे मिलेगा?** अभाव से भाव व भाव से अभाव नहीं हो सकता। यह दर्शन व विज्ञान का सर्वसम्मत सिद्धान्त है। अत: मतवादियों द्वारा जगत् में प्रभु-प्राप्ति का प्रयत्न उनकी अपनी मानी हुई मान्यताओं के अनुसार व्यर्थ है। जब मतों का ईश्वर यहाँ है ही नहीं तो जगत् में वह मिलेगा कैसे? यह लोग प्रश्न-कर्त्ता को उत्तर माँगने का भी अधिकार नहीं देते।

पौराणिक तो शोर ईश्वर पूजा का मचाते हैं और करते मूर्तिपूजा

हैं। **इसका तो नाम ही मूर्तिपूजा है। यह ईश्वर पूजा कैसे हो गई?** यह शंका मत करो। वेद की अनादि वाणी परमेश्वर का स्वरूप इन शब्दों में बताती है–

'व्याप परुषः'[1]

अर्थात्–प्रभु सर्वव्यापक है।

'सऽओत प्रोतश्च विभूः प्रजासु।'[2]

अर्थात्–ईश्वर प्राणियों में ओत–प्रोत है।

सर्वव्यापक ईश्वर ही इस विश्व में प्राप्त किया जा सकता है। जो यहाँ है ही नहीं वह यहाँ मिलेगा कैसे? ऊपर बताया जा चुका है कि पुराणी, किरानी व कुरानी लोग ईश्वर को क्रमशः क्षीर सागर, कैलाश पर्वत, चौथे व सातवें आसमान पर मानते हैं अतः उनकी प्राप्ति के लिये इन मतों के मानने वालों को वहीं जाना चाहिए जहाँ उसका निवास है। वैदिक धर्म ईश्वर को एक देशी नहीं, सर्वव्यापक मानता है। यह वैदिक मान्यता माने बिना मतवादियों की पूजा उपासना निरर्थक ही है।

वेद ईश्वर को सच्चिदानन्द, सर्वव्यापक और निराकार मानता है। ईश्वर साकार हो ही नहीं सकता। वायु में, जल में, लोक लोकान्तरों में, अनेक छोटे–बड़े प्राणी हैं। कितने ही जीव जन्तु हैं जो हमें आँखों से दिखाई भी नहीं देते। यदि ईश्वर को साकार माना जाए तो छोटे–छोटे कीट पतंगों के शरीरों का निर्माण साकार ईश्वर ने कैसे किया? निराकार ईश्वर बड़े और छोटे से छोटे शरीर व पदार्थ का निर्माण बिना किसी कठिनाई के कर सकता है। वह हथिनी व तितली दोनों के गर्भ में व्यापक है।

ईश्वर पर–आश्रित नहीं

मत–मतान्तर ईश्वर को सृष्टि का रचियता तो मानते हैं परन्तु ईश्वर को पर–आश्रित बना देते हैं। उसकी सृष्टि उसके आधीन

1. अथर्व॰ 20–131–17
2. यजु॰ 32–8

नहीं। उसके दूतों व पूतों की दया पर है। और कहीं-कहीं यह भी मानते हैं कि ईश्वर सब कुछ है, ईश्वर जो चाहे सो करे; ईश्वर ही सब कुछ करता है। और कभी कहते हैं ईश्वर ही सब कुछ कराता है।

ईश्वर नियन्ता है

अनादि वेद ईश्वर को **'ऋतस्य योनि'** मानता है। विश्व नियमों में बंधा है। नियन्ता ईश्वर है। ईश्वर जो चाहे सो करे। यह वैदिक मान्यता नहीं। ईश्वर जो चाहे सो कर सकता है, यह एक चापलूसी है, दार्शनिक सत्य नहीं। चापलूसी व सत्य का क्या सम्बन्ध? मतवादी ईश्वर की उपासना नहीं चापलूसी करते है। यह चापलूसी प्रत्येक प्रबुद्ध व्यक्ति को अखरती है।

एक मुसलमान कवि नज़ीर अकबर इलाहाबादी ने इसी मनोवृत्ति पर व्यंग्य कसते हुए अपनी एक लम्बी कविता में लिखा है:-

जो ख़ुशामद करे ख़ल्क उससे सदा राज़ी है।
सच तो यह है कि ख़ुशामद से खुदा राज़ी है।

ईश्वर न सब कुछ करता है, न सब कुछ कराता है।

वेद यह नहीं मानता कि ईश्वर सब कुछ करता है, न ही वह सब कुछ कराता है। ईश्वर व जीव के कर्तृत्व पर हम आगे कुछ विचार करेंगे। यहाँ यह जान लेना चाहिए कि ईश्वर के नियमों को तोड़ा नहीं जा सकता। ईश्वर स्वयं भी अपने नियमों को नहीं तोड़ता। सृष्टि नियम तोड़ने की जीवों की कुचेष्टा का परिणाम दुःख के अतिरिक्त और कुछ हो नहीं सकता। ईश्वर अपने सामर्थ्य से सृष्टि का संचालन करता है, वह पर-आश्रित नहीं। वेद कहता है-

'विश्वस्य मिषतो वशी' (यह विश्व उसके वश में है)

दूतों, पूतों के सहारे चलने का प्रश्न ही पैदा नहीं होता। वैदिक धर्म का मतों से यह एक मौलिक भेद है।

ईश्वर का ज्ञान व कर्म

वेद का अन्य मतों से एक मौलिक भेद यह है कि मत-मतान्तर ईश्वर के ज्ञान व कर्म में संगति नहीं मानते। मत-मतान्तारों में सृष्टि नियमों के विरुद्ध मान्यताएँ, चमत्कारों में विश्वास और आदि सृष्टि में ईश्वरीय ज्ञान के आविर्भाव में अविश्वास अथवा आज उस (आदि सृष्टि के समय प्राप्त होने वाले ईश्वरीय ज्ञान) ज्ञान को अनुपयोगी मानना, ये सब बातें ईश्वर के ज्ञान व कर्म की संगति न मानने का परिणाम नहीं तो क्या है?

ईश्वर की रचना, ईश्वर के ऋत व सत्य का दर्शन इन मतवादियों के लिये उसकी महती महत्ता का प्रमाण नहीं। उसके नियमों का टूटना अथवा तोड़कर दिखाना अर्थात् चमत्कार ही किसी व्यक्ति को किसी मत में लाने की मुख्य युक्ति है। **मतमतान्तरों में सृष्टि नियमों को तोड़कर दिखाने का दावा करने वाला व्यक्ति धार्मिक व आध्यात्मिक दृष्टि से बड़ा है। वैदिक धर्म में बड़प्पन की कसौटी नियम का पालन है उल्लंघन नहीं।** वैदिक ऋषि ईश्वर के नियमों का पालन करने वाले, उसके नियमों का प्रचार करने वाले उसके ज्ञान का प्रकाश व प्रसार करने वाले होते हैं। वे परमेश्वर के नियम तोड़ने वाले नहीं होते। वेद इसी को कल्याण-मार्ग मानता है। श्रुति का वचन है-

'सुगा ऋतस्य पन्था:।'[1]

ऋत का मार्ग सरल होता है। वेद की आज्ञा है-

'ऋतस्य पथ्या अनु।'[2] (ऋत के मार्ग पर चल।)

जो लोग चमत्कारों में विश्वास रखते हैं उनसे हमारा प्रश्न है कि क्या चमत्कार सृष्टि नियम के अनुकूल हैं या प्रतिकूल? महान् आर्य दार्शनिक पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय लिखते हैं-

The occurrence of an un-natural phenomenon is a contradiction of terms. If it occurs, it is natural; if it is natural it

1. ऋग्वेद 8-31-13
2. सामवेद 1-5-7-7

must occur. Then, is it antinatural? No. Who can defy nature successfully?[1]

अर्थात् सृष्टि नियम विरुद्ध अस्वभाविक घटना का घटित होना अपने आप में परस्पर विरोधी कथन है। यदि यह घटित होता है तो फिर स्वाभाविक है और यदि यह सृष्टि नियम के अनुसार है तो अवश्य ऐसा होना ही चाहिए। तो क्या यह सृष्टि नियम विरुद्ध है? नहीं, सृष्टि नियमों को तोड़ने में कौन सफल हो सकता है?

वेद का सिद्धान्त है कि ईश्वर नित्य है, उसका ज्ञान नित्य है और उसका कर्म भी नित्य है। जहाँ ईश्वर का नियम टूटा समझो वहाँ उसकी सत्ता का अभाव हो गया। एक विद्वान् का कथन है कि **नियम के अभाव में मैं यह भी नहीं जान सकता कि भूख कैसे मिटती है। सम्भव है आज खाने से मिटे, कल गाने से, परसों रोने से मिटे।**

सर्वाधिक दु:ख कौन देता है? :
यदि संसार में सबसे अधिक दु:ख देने वाला जन्तु है तो वह मनुष्य ही है।

1. Superstition Page 13

दूसरा अध्याय

परमेश्वर तो परमेश्वर ही है।

वैदिक धर्म का अवैदिक मतों से एक बहुत बड़ा मौलिक भेद यह है कि **वैदिक धर्म परमात्मा को मनुष्य नहीं मानता और मनुष्य को परमात्मा नहीं मानता।** हम आगे इस कथन को और स्पष्ट करने के लिये यह कहेंगे कि वैदिक धर्म में ईश्वर को नर अथवा नारी अथवा नर-पशु, (यथा नरसिंह) नहीं बनाया जाता और न ही मनुष्य को परमेश्वर अथवा परमेश्वर के रूप में बनाया गया बताया जाता है। मनुष्य को परमेश्वर सदृश बताना, जानना व मानना एक हास्यास्पद मान्यता है।

हम किस-किस मत-पंथ व ग्रन्थ की ऐसी मान्यता की यहाँ चर्चा करें, प्रबुद्ध पाठक स्वयं ही पूछताछ कर लें, खोज पड़ताल कर लें या तनिक विचार कर लें तो अवैदिक मतों की ईश्वर व मनुष्य के स्वरूप विषयक यह भ्रमोत्पादक मान्यता सामने आ जायेगी। तथापि पाठक संकेत रूप में जानना चाहें तो हम संक्षेप से कुछ निवेदन कर ही देते हैं-

पौराणिक हिन्दुओं ने अवतारवाद की मान्यता घड़कर प्रभु का नर देहधारी बना दिया। परमात्मा को परमात्मा नहीं रहने दिया। सर्वत्र को एकत्र कर दिया। सर्वव्यापक, सर्वज्ञ व सर्वशक्तिमान् प्रभु जब एक देह में बन्द हो गया तो सर्वव्यापक रहा क्या? 'सर्व' का तो फिर कुछ अर्थ ही न रहा। यह पाठक इस पुस्तक में अन्यत्र भी पढ़ेंगे। इन्द्रियों से काम लेने वाला या इन्द्रियों पर आश्रित अवतार सर्वज्ञता तो खो ही बैठा।

इस विचित्र मान्यता के कारण पौराणिकों ने मनुष्य को परमात्मा बना डाला। श्रीराम कृष्ण आदि महामानव परमात्मा बना दिये गऐ। महात्मा बुद्ध को अवतार मानकर भगवान् बना दिया। महाराज राम

माता सीता जी के खो जाने पर कितने व्याकुल हुये? **वाल्मीकि रामायण** पढ़कर देख लीजिये। दूसरों की सहायता से माता सीता को खोजा व प्राप्त किया। परमात्मा तो परमानन्द है। उसके शोकाकुल होने का तो प्रश्न ही नहीं उठता। दूसरों से माता सीता का पता पूछने व पता करवाने वाले राम क्या सर्वज्ञ थे? क्या सर्वशक्तिमान् थे?

उत्तर की खोज में भटकते प्रश्न–

चौड़ा मुँह किये हुये (?) ऐसे अनेक प्रश्न कई शताब्दियों से उत्तर की खोज में भटक रहे हैं। भला पौराणिक इन प्रश्नों का उत्तर क्यों दें? और क्या दें? इन भले लोगों ने भगवान् को भगवान् नहीं रहने दिया और मानव को मानव नहीं रहने दिया।

अवतार शब्द किसने घड़ा?

वैसे यह भी पता लगाने वाली बात है कि अवतार शब्द घड़ा किसने? **चारों वेदों में, छह दर्शनों में, ग्यारह उपनिषदों में, मनुस्मृति, वाल्मीकि रामायण व महाभारत में तथा गीता में तो अवतार शब्द है ही नहीं।** बड़े अचम्भे की बात है ईश्वर प्रदत ज्ञान वेद व आर्ष ग्रन्थों में न होने पर भी पौराणिकों ने करोड़ों लोगों को इस अवतारवाद के कल्पित भ्रम जाल में फँसा रखा है।

अब ईसाई मत की ओर जायें। बाइबल में भी परमात्मा को मनुष्य व मनुष्य को परमात्मा बनाने वाला ठीक वैसा ही चक्कर मिलेगा। हम स्वयं क्यों कहें। बाइबल ही से इस विषय में कुछ पूछते हैं। उत्पत्ति की पुस्तक में स्पष्ट आता है–

"And God said, Let us make man in our own image, after our likeness.[1]" अर्थात् तब ईश्वर ने कहा कि–हम मनुष्य को अपने स्वरूप में अपने समान बनावें। और फिर कोई पाँच पंक्तियों के पश्चात् यही बात दोहरायी गई है, "And God created man in his own image, in the image of God creatd he him; male and female created he them.[2]" अर्थात् तब ईश्वर ने मनुष्य को अपने स्वरूप में उत्पन्न किया। उसने उसे ईश्वर के स्वरूप में उत्पन्न

1. व 2. Genesist 26-27

किया। उसने उन्हें नर व नारी बनाया।

अब पाठक विचार करें कि जब परमात्मा ने नर व नारी को अपने ही स्वरूप में उत्पन्न किया तो **पता चला कि परमेश्वर भी मनुष्य जैसा है और मनुष्य परमेश्वर जैसा है।** दोनों में फिर भेद क्या रहा? यहाँ कई प्रश्न उठ खड़े होते हैं जिनका उतर दे पाना किसी पादरी या पोप के बस की बात नहीं है। जो दुर्बलतायें मनुष्यों में हैं वही God परमात्मा में माननी पड़ेगी। कारण? मनुष्य परमात्मा के स्वरूप में ही बनाया गया है। भले लोगों ने यह नहीं सोचा कि मनुष्य में तो परमात्मा के गुण पवित्रता, न्याय, दया, सर्वज्ञता आये या नहीं परमात्मा को तो इन्होंने मानवीय दुर्बलताओं से लाद ही दिया। **अब ईश्वर इस बोझे को ढोता फिरे। इन्होंने तो जो करना था सो कर दिया।**

इस्लाम की मान्यता भी कुछ इसी प्रकार से है। यहाँ कुरान के अनुसार अल्लाह मियाँ जी अर्श (आकाशस्थ) तख़्त पर विराजमान् हैं। इस सिंहासन को फ़रिश्तों ने उठा रखा है। उसका दायाँ है और बायाँ भी है। आगा है और पीछा है। वह मुख से बोलता है। शासकों के समान उसके दूत हैं। उसकी सेना है और तो और उसको ऋण भी लेना पड़ता है। अल्लाह मियाँ की एक ऊँटनी भी है।

यह सब कुछ पढ़कर सुनकर कौन उस अल्लाह को सर्वव्यापक, सर्वज्ञ व निराकार मानेगा?

ऐसी ही शंकायें स्वयं कुरानकार के मन में भी उठी होंगी तभी तो कुरान में एक स्थान पर अल्लाह के बारे में यह भी कहा गया है–

"उस जैसा कोई नहीं।[1]"

कुरान का यह वेदोक्त घोष युक्ति संगत व नित्य सत्य है।

इस युग में महर्षि दयानन्द जी ने वैदिक घोष करते हुए ईश्वर को जहाँ सच्चिदानन्द स्वरूप, निराकार, सर्वाधार, अजर, अमर, अनादि, नित्य, पवित्र व सृष्टिकर्त्ता बताया वहाँ उस परमेश्वर को **'अनुपम'** भी बताया। दयालु दयानन्द की यह एक मौलिक देन है कि उसने बहुत ज़ोर देकर प्रभु को **'अनुपम'** बताया। कल्याणी

1. द्रष्टव्य कुरान मजीद सू० शूरा रु० 2

वाणी वेद में परमेश्वर के लिये आया है–

'न तस्य प्रतिमा अस्ति।'[1]

इस सूक्ति का अर्थ यह तो है ही कि उसकी कोई प्रतिमा नहीं है। इसका अर्थ यह भी है कि परमात्मा के सदृश कोई भी नहीं है।

यहाँ हमें रह-रह कर श्रद्धेय पं० गंगाप्रसाद जी उपाध्याय का एक कथन स्मरण हो आता है। उनके इस वचन को हम गागर में सागर कहेंगे। उन्होंने ऋषि दयानन्द की देनों की चर्चा करते हुए कभी लिखा था–

"He has given us a bold philosophy of life. A Philosophy of the reality of God, reality of man and the reality of the universe in which man has to live in. His is a philosophy of bold actions and not of ideal musings."

अर्थात् ऋषि जी ने हमें जीवन का एक वीरोचित दर्शन दिया है। एक प्रभु की सत्यता का दर्शन, मनुष्य की सत्यता का दर्शन और उस ब्रह्माण्ड की सत्यता का दर्शन दिया है जिसमें मनुष्य को जीवन बिताना होता है। उस ऋषि का जीवन-दर्शन साहसिक कार्यों का दर्शन है न कि निरर्थक चिन्तन का।

इस मार्मिक कथन का भाव यह है कि वैदिक धर्म व दर्शन ईश्वर को ईश्वर मानता है। ईश्वर की एक पृथक सत्ता है। यह एक नित्य सत्य है। मनुष्य की अपनी सत्ता है। यह भी एक अनादि सत्य है। और यह जगत् भी मिथ्या नहीं है, प्रकृति से बना यह जगत् भी एक सत्य है। यह सृष्टि प्रवाह से अनादि है। ईश्वर, जीव व प्रकृति तीनों की अपनी-अपनी सत्ता है। इस सत्य को कौन झुठला सकता है?

वैदिक धर्म ईश्वर को मनुष्य नहीं बताता। मनुष्य को परमेश्वर नहीं बताता और परमात्मा से प्रकृति को नहीं उपजाता। यह वैदिक धर्म का अन्य मतों से एक मौलिक भेद है। इसको न समझकर मत पंथों ने ईश्वर व मनुष्य की सत्ता व स्वरूप तथा जगत् की उत्पत्ति का वर्णन करते हुए सब कुछ गिडमिड कर डाला है। प्रभु करें कि सब जन पूर्वाग्रह से मुक्त होकर इस मौलिक भेद को समझें।

1. यजुर्वेद 32-3

तीसरा अध्याय
ईश्वरीय ज्ञान

'अच्छिन्नस्य ते देव सोम सुवीर्यस्य रायस्पोषस्य ददितारः। स्याम। सा प्रथमा संस्कृतविंश्ववारा स प्रथमो वरुणो मित्रोऽअग्नि।।'[1]

हे दिव्य शक्तियों के भंडार प्रभो। हम निरन्तर अबाध होकर बहने वाले तेरे सुवीर्य और ऐश्वर्य और उससे प्राप्त होने वाली पुष्टि के देने वाले बनें। सबसे पहला वरण करने योग्य अथवा पाप से बचाने वाला सबको गर्मी और प्रकाश देकर आगे ले जाने वाला सब का हित चाहने वाला मित्र तू ही है। हम तेरी विश्व कल्याण करने वाली विश्व की सर्वप्रथम संस्कृति वेद की संस्कृति का वरण करें। हम धरा धाम पर शान्ति की वह धारा बहावें।

हमने ऊपर लिखा है कि यदि सृष्टि में परमेश्वर के ज्ञान के आविर्भाव में अविश्वास अथवा आज उस ज्ञान को अनुपयोगी मानना ये सब बातें ईश्वर के ज्ञान कर्म की संगति न मानने का परिणाम हैं।

वैदिक धर्म की मान्यता है कि परमेश्वर ने आदि सृष्टि में ज्ञान का प्रकाश चार ऋषियों की हृदय रूपी गुहा (Cavelike heart) में किया। वेद स्वयं कहता है–

बृहस्पते प्रथमं वाचो अग्रं यत्प्रैरत नामधेयं दधानाः।
यदेषाँ श्रेष्ठं यदरिप्रमासीत्प्रेणा तदेषां निहितं गुहाविः।।'[2]

---

1. यजुर्वेद 7–14
2. ऋग्वेद 10–71–1

वेद का प्रकाश हुआ, वेद नाज़िल नहीं हुआ

मत–मतान्तर ईश्वर को एक देशी मानते हैं अतः वे ज्ञान के प्रकाश की बजाय इलहाम का नाज़िल होना मानते हैं। नाज़िल का अर्थ है उतरना। ईसाई व मुसलमान भाई ईश्वर को चौथे व सातवें आसमान पर मानते हैं इसलिए यह स्वाभाविक ही है कि वे ज्ञान के उतरने में विश्वास करें। वे ये भी मानते हैं कि अल्लाह अपने नबियों को अपने दूतों द्वारा ज्ञान पहुँचाता है। वेद ईश्वर को सर्वव्यापक मानता है। इसलिए वैदिक मान्यता के अनुसार ईश्वर ने किसी दूत की सहायता के बिना ही ऋषियों की हृदय गुहा में ज्ञान का प्रकाश किया।

पैग़म्बरवाद व ईश्वरीय ज्ञान

इस्लाम आदि मतों का पैग़म्बरवाद भी ईश्वर को एकदेशी मानने के कारण पैदा हुआ। पैग़म्बर का अर्थ है पैग़ाम या सन्देश लाने वाला। सन्देश दूर से लाया जाता है। समीप वालों को कुछ सुझाने या समझाने के लिये सन्देश भेजने की क्या आवश्यकता है? इस से स्पष्ट है कि पैग़म्बरवाद की नींव ईश्वर की सर्वव्यापकता में अविश्वास या यूँ कहिये कि जगत् से प्रभु की दूरी पर रखी गई है।

सृष्टि नियम व ईश्वरीय ज्ञान

कुछ लोग आदि सृष्टि में ईश्वरीय ज्ञान के प्राप्त होने पर शंका करते हैं। हमारा उत्तर है कि सृष्टि ईश्वर का कर्म है। वेद उसका ज्ञान है। सृष्टि रचना का नियम ही यह सिद्ध करता है कि ईश्वरीय ज्ञान का प्रकाश आदि सृष्टि में ही होना चाहिए। मनुष्य का नियम है। Necessity is the mother of invention. अर्थात् आवश्यकता आविष्कार की जननी है। सृष्टि नियम इसके विपरीत है। आवश्यकता से पूर्व ही परमेश्वर ने उसकी पूर्ति के साधन प्रदान

किये यथा–

मनुष्य बाद मैं पैदा हुआ पहले रहने के लिये धरती, पीने के लिये पानी, श्वास लेने के लिये वायु, खानपान के लिए अन्न फल व वनस्पतियाँ, दूध देने वाले पशुओं को भगवान् ने बनाया। बच्चा जन्म के बाद रोता रहा और फिर माँ के स्तनों में दूध आया, ऐसा हम नहीं देखते। दूध आने के बाद बच्चा आया। सृष्टि नियम यह है कि भगवान् आवश्यकता से पूर्व ही उसकी पूर्ति का सामान पैदा कर देता है। इसमें अपवाद नहीं है। इस सृष्टि नियम के अनुसार परमेश्वर ने आँख बनाने से पूर्व ही सूर्य बना दिया। इसी सृष्टि नियम के अनुसार भगवान् ने जब बुद्धि दी तो बुद्धि के लिए ज्ञान का प्रकाश आदि सृष्टि में दिया।

आप बाज़ार से कपड़े धोने की मशीन लें या बिजली की प्रेस, उसके साथ आपको एक Instruction Book निर्देश पुस्तिका भी कम्पनी की ओर से मिलती है। यह कैसे सम्भव हो सकता है कि परमात्मा ने इतनी विशाल सृष्टि की रचना तो कर दी परन्तु इसके उपयोग, प्रयोग, उपभोग की विधि बताने के लिए अपनी निर्देश पुस्तक ही न दी।

दैनिक जीवन में ज्ञान पहले कर्म पीछे

हठ व दुराग्रह से कोई माने या न माने, मन व मस्तिष्क सबका यही वैदिक सिद्धान्त मानता है। अंग्रेज़ी व अन्य भाषाओं में लोकोक्ति है–

Look before you leap.

भाव यह है कि कर्म से पूर्व ज्ञान आवश्यक है। एक लोकोक्ति है–

Think before you speak

अर्थात् पहिले सोचो फिर बोलो।

ये दोनों वाक्य मानव समाज के वैदिक सिद्धान्त में स्वाभाविक अडिग विश्वास को व्यक्त करते हैं। वैदिक सिद्धान्त यह है कि

मानव ने जब सृष्टि में जन्म लिया तो उसको मार्गदर्शन और कल्याण के लिए ईश्वर ने वेद ज्ञान दिया।

कुछ लोग विकासवाद की दुहाई देकर कहते हैं कि मानव ने शनैः शनैः उन्नति की और उन्नति करते-करते धीरे-धीरे ज्ञान प्राप्त कर लिया। कैसा उल्टा चक्कर है? हम कहते हैं कि ज्ञान उन्नति के लिये आवश्यक है। ये कहते हैं उन्नति करके ज्ञान प्राप्त किया। मनोविज्ञान वैदिक सिद्धान्त को स्वीकार करता है। मनोविज्ञान यह मानता है कि प्रत्येक मानसिक व्यापार के तीन पहलू होते हैं। (1) Congnition (ज्ञान), (2) Affection (अनुभूति), (3) Conation (क्रिया)।

मनोविज्ञान का यह सिद्धान्त सारे विश्व के विचारकों को मान्य है। इस सिद्धान्त के अनुसार क्रिया से पूर्व अनुभूति और अनुभूति से पूर्व ज्ञान आवश्यक है। जब क्रिया से पूर्व अनुभूति और अनुभूति से पूर्व ज्ञान अनिवार्य है तो फिर बिना ज्ञान के मानव ने उन्नति कैसे कर ली?

परिवर्तनशील जगत् के नियम अटल हैं

मतवादी आक्षेप करते हैं कि परिवर्तनशील संसार में मार्गदर्शन के नियम अर्थात् ईश्वरीय ज्ञान भी समय-समय पर परिवर्तित होना चाहिये। ऐसा कहने वाले बंधु भूल जाते हैं कि मनुष्य के नियम बदलते हैं। इसका कारण यह है कि जीव अल्पज्ञ हैं। सर्वज्ञ ईश्वर के बनाए सृष्टि नियम नहीं बदलते। आज तक एक भी तो सृष्टि नियम नहीं बदला। सत्य न मरता है न जन्म लेता है। सत्य तो नित्य है। सब मानते हैं कि Truth never dies.

वेद ज्ञान अनादि है और देश व काल के बन्धन में नहीं। वेद सबके लिए है और सब युगों के लिये हैं। अंग्रेज़ी में व्याकरण का नियम है कि Direct से Indirect करते समय यदि किसी वाक्य में नित्य सत्य कहा गया है तो उस वाक्य का काल नहीं बदला जाएगा। वह वाक्य सदा वर्तमान काल में ही रहेगा यथा Two and

two make four. The earth moves round the sun. Unity is strength. आदि-आदि। यदि पूछा जाए कि इन का काल क्यों नहीं बदलता है तो उत्तर मिलता है ये Eternal Truth. (नित्य सत्य) हैं। सत्य काल के साथ नहीं बदलता। वह नित्य नया है। अथर्ववेद में यही सिद्धान्त प्रस्तुत करते हुए भगवान् ने कहा है–

सनातनमेनाहुरुताद्य स्यात् पुनर्णवः।
अहोरात्रे प्र जायेते अन्यो अन्यस्य रूपयोः॥[1]

अर्थात् उसको सनातन कहते हैं जो आज भी फिर नया जैसा होता हो। दिन-रात दोनों एक-दूसरे के रूप में उत्पन्न हुआ करते हैं। प्रत्येक रविवार नया है। प्रत्येक सोमवार नया है। प्रत्येक दिन नया है परन्तु यह दिन-रात का चक्कर कितना पुराना है। पुराना होने के बाद भी नया है। कारण? यह अटल नियम है।

सत्य नित्य है, नूतन भी है

प्रसिद्ध कवि Byron (बायरन) ने भी इसी दार्शनिक सत्य को व्यक्त करते हुए लिखा है– 'Tis strange but true; for truth is always strange; stranger than fiction.'

भाव यह है कि सत्य पुराना होने पर भी सदैव नया है। इस को सब मानते है। वैदिक धर्म पुरातन है, सनातन है। यह ठीक है परन्तु मानव कल्याण का यही मार्ग है। जो नित्य बदलता है वह सत्य नहीं, जो सत्य नहीं वह मान्य नहीं, हितकर नहीं। मानव जाति का भला इसी में है कि हम असत्य को त्याग कर सत्य को ग्रहण करें।

बाईबल में वेद की महिमा

जून 1968 ई० की बात है। कपूरथला के आर्य बंधु श्री सुलक्षण कुमार जी के साथ मैं केरल में वैदिक धर्म-प्रचार के लिए गया।

1. द्रष्टव्य अथर्ववेद 10-8-23

चैंगवन्नम् में हम Seventh Day Adventist Church के पादरी श्रीयुत K.V. Chacko के घर गये। श्री पं० नरेन्द्र भूषण जी तथा पं० गोविन्द भूषण जी भी साथ थे। श्री नरेन्द्र जी ने परिचय करवाया। धर्म चर्चा आरम्भ हुई तो पादरी महोदय ने एकदम प्रश्न किया–

"Do you believe in a living God?"

अर्थात् क्या आप जीवित परमेश्वर में विश्वास करते हैं?

मैंने झट से उत्तर दिया–

"Yes, but not in a absentee."

अर्थात् हम आर्य लोग जीवित परमेश्वर (अजर, अजन्मा, अमर, नित्य, अनादि, सत, चित व आनन्द स्वरूप) में विश्वास रखते हैं परन्तु हमारा ईश्वर अनुपस्थित नहीं। कहीं किसी आकाश, पाताल, जल, पर्वत में किसी आसन या सिंहासन पर नहीं बैठा। पादरी महोदय को मेरे इस उत्तर ने झकझोर सा दिया। मैंने कहा यदि आप आज्ञा दें तो मैं एक प्रश्न करूँ? पादरी महोदय ने कहा कीजिए। मैंने कहा बाईबल में आता है–

"In the beginning was the Word and the Word was with God, and the Word was God."[1]

अर्थात् आरम्भ में शब्द था और ईश्वर के साथ शब्द था और शब्द ईश्वर था।

पादरी महोदय ने कहा–हाँ, बाईबल में ये वचन हैं। तब मैंने पूछा Word (शब्द) से यहाँ क्या अभिप्राय है? पादरी महोदय बोले शब्द का अर्थ शब्द है। मैंने फिर पूछा आरम्भ में शब्द था ऐसा बाईबल का कथन है। सृष्टि के आदि वाला शब्द गया कहाँ? बाईबल तो ईसा ने दिया। सृष्टि के आदि का शब्द कहाँ है? पादरी महोदय ने स्पष्ट कहा मुझसे यह प्रश्न आज तक किसी ने नहीं पूछा। न मुझे स्वयं कभी इस पर शंका हुई। मुझे इसका अर्थ ज्ञात नहीं।

तब मैंने कहा क्या मैं इसका अर्थ बतलाऊँ? पादरी की आज्ञा पाकर मैंने कहा कि बाईबल का लेखक आर्य दर्शन के पारिभाषिक शब्द को समझा नहीं सकता। वैदिक दर्शन में वेद प्रमाण को शब्द

1. St. John, New Testament, Chapter 1 Verse 1.

प्रमाण भी कहा जाता है। शब्द प्रमाण और भी हो सकता है परन्तु आरम्भ में तो स्वतः प्रमाण वेद ही शब्द प्रमाण था। अतः शब्द का अर्थ वेद ज्ञान है। बाईबल का यह कथन सत्य है कि सृष्टि के आदि में वेद का प्रकाश हुआ।

स्मरण रहे कि सिख भाई गुरुओं की वाणी को शब्द कहते है। गुरुवाणी के पाठ को शब्द कीर्तन कहा जाता है। कारण यही है कि ऋषियों, मुनियों व विद्वानों के वचनों को भी शब्द प्रमाण कहते हैं।

फिर मैंने पूछा "And the Word was with God." का क्या भाव है? पादरी महोदय ने सरलता से मुझे ही इसका रहस्य समझाने के लिए कहा। मैंन कहा वैदिक दर्शन ही इस गुत्थी को सुलझा सकता है। वेद का सिद्धान्त है कि ईश्वर नित्य है। उसका गुण, कर्म, स्वभाव भी नित्य है। वेद नित्य ईश्वर का नित्य ज्ञान है अतः उसका ज्ञान उसके साथ ही रहेगा। ईश्वर से उसका ज्ञान पृथक् नहीं किया जा सकता। गुण गुणी में रहता है यह सच्चाई सारा संसार मानता है। इस सत्य को आस्तिक मानते हैं, सब नास्तिक मानते हैं। पादरी महोदय यह उत्तर सुनकर बड़े प्रसन्न हुए।

मैंने फिर पूछा "And the Word was God." का क्या अभिप्राय है? पादरी जी ने पुनः कहा आप ही यह रहस्य समझायें। मैंने निवेदन किया कि वैदिक दर्शन यह रहस्य भी सरलता से समझाता है। आर्य धर्म में परमेश्वर को ज्ञान स्वरूप कहा गया है। वेद में इस भाव के अनेक मन्त्र आए हैं। उपनिषदों में भी बारम्बार परमेश्वर को ज्ञान स्वरूप कहा गया है। बाईबल के ये वचन ईश्वरीय ज्ञान की चर्चा कर रहे हैं। यहाँ सपष्ट रूप से यह कहा गया है कि ईश्वर ने सृष्टि के आदि में अपने अनादि ज्ञान वेद का प्रकाश किया। वैदिक धर्म से विमुख होने के कारण, गुरु शिष्य परम्परा टूट जाने के कारण बाईबल वाले word (शब्द) का अर्थ न समझ सके; परिणाम यह हुआ कि बाईबल के ये शब्द अपने आप में एक उलझन बन गये। यदि word का अर्थ शब्द है तो ईसाई बतायें कि 'आदि में शब्द था' का क्या भाव है? वह शब्द

कहाँ गया? गुम क्यों हुआ? वह शब्द ईश्वर के साथ था इसका क्या अर्थ? वह शब्द निरर्थक था या सार्थक? वह शब्द था किसका? किसके लिए था? और क्यों कहा गया?

निष्पक्ष विद्वानों को मानना पड़ेगा कि इसका भाव वही है जो हमने बताया है। केवल वेद ही सृष्टि के आदि में आविर्भाव की घोषणा करता है और किसी भी ग्रन्थ ने अपने आदि में आने की बात नहीं कही। युक्ति व प्रमाण वेद के पक्ष में हैं। पादरी महोदय ने सहर्ष हमारा पक्ष स्वीकार किया।

अनादि वेद के सम्बन्ध में डॉ० गोकुलाचन्द जी नारंग ने लिखा है–

"The Vedas have stood like light houses of truth and wisdom through the stress and storms of ages and have commanded the well deserved allegiance and reverence of hosts of the wisest and holiest of men and women. All glory to those who, without any desire or hope of material gain dedicated their whole lives to the study and preservation of every syllable of these monumental works in their pristine purity."[1]

अर्थात् युग-युगों की उथल-पुथल में भी वेद सत्य व ज्ञान के ज्योति स्तम्भ बने रहे। अनेक गुणियों, मुनियों, अत्यन्त पवित्रात्मा स्त्री-पुरुषों की श्रद्धा इन पर रही है। जिन्होंने वेद के पठन-पाठन और इसके एक-एक अक्षर व एक-एक मात्रा की रक्षा और इसकी पवित्रता, शुद्धता बनाये रखने के लिये जीवन खपा दिये उनका जितना भी गुणकीर्तन किया जाय थोड़ा है।

उन तपस्वियों ने वेद में न मिलावट होने दी, न हटावट होनी दी।

वह दास होगा :

जो नियमों के आधीन नहीं होता
वह अनियमितता का दास होगा।

1. Glorious Hinduism.

चौथा अध्याय
किसने भेजा? किसको भेजा?

वैदिक धर्म का अन्य मतों से एक मौलिक भेद यह है कि वैदिक धर्म यह मानता है कि परमात्मा ने अनादि जीवों के कर्म भोग के लिये, उनके कल्याण के लिये यह सृष्टि रची है। सब जीवों को उनके किये हुये कर्मों के अनुसार ही सुख व दुःख रूपी फल प्राप्त होता है। न्यायकारी व दयालु ईश्वर सब जीवों के कर्मानुसार ही उन्हें जन्म देता है। प्रभु हमारा जन्मदाता है तभी तो उसे वेद माता व पिता कहता है।

वैसे तो बाईबल कुरान आदि धर्म ग्रन्थ भी ईश्वर को Creator (रचयिता) व ख़ालिक (स्रष्टा) मानते हैं परन्तु ऐसा मानकर भी पैग़म्बरवादी मतों की एक विचित्र मान्यता है कि ईसा ईश्वर का इकलौता पुत्र है। ईसा को परमात्मा ने भेजा। मुसलमान यह मानते हैं कि अल्लाह ने मुहम्मद को भेजा। प्रत्येक नबी (Prophet) का यही दावा है कि मुझे परमात्मा ने भेजा है।

सब पैग़म्बरों ने अपने-अपने समय में यह घोषणा की कि मेरे बाद अब कोई नबी नहीं आयेगा।

सब पैग़म्बरों ने अपने से पूर्व आने वाले नबी को पैग़म्बर तो माना परन्तु उसके काल का ही। जिसने अपनी नबुव्वत (Prophethood) की घोषणा की उसने अपने से पूर्व आने वाले की पैग़म्बरी निरस्त कर दी। आप यह कह सकते है कि **आते ही अपने से पूर्व आने वाली नबी की Service Terminate (अपदस्थ) कर दीं।**

मुहम्मद साहेब ने ईसा, मूसा आदि को नबी तो माना है परन्तु किस काम का? अब उनका क्या उपयोग? उनका सिक्का अब नहीं चलता। अब तो मुहम्मद साहब की ही अल्लाह मानता है।

एक और विश्वास रहा सब पैग़म्बरों का। सबने यह घोषणा की

कि मैं ईश्वर से नवीन व्यवस्था–नया नियम–नई पुस्तक लेकर आया हूँ। अब पुराना नियम नहीं चलेगा। ज़रथुष्ट, मूसा, ईसा व मुहम्मद सब पर इलहाम उतरे परन्तु प्रत्येक ने अपने से पूर्व वाले की किताब को माना, परन्तु **निरस्त करने के लिये ही माना।** मुहम्मद ने कहा अब कुरान से काम बनेगा, बाईबल से नहीं और बाईबल ने अपने से पूर्व के ग्रन्थ को काटकर रख दिया। इस विचित्र नीति के सम्बन्ध में हम कोई टिप्पणी नहीं करेंगे।

हमारी तो एक ही शंका है कि हज़रत ईसा को ईश्वर ने जन्म दिया परन्तु शेष मनुष्यों को भी तो वही पैदा करता चला आ रहा है। यदि ईसा ईश्वर का इकलौता पुत्र है फिर ईसाई परमात्मा को नित्य प्रति Heavenly Father (स्वर्गस्थ पिता) कहकर क्यों पुकारते हैं?

यदि वह प्रभु केवल नबियों को ही भेजता है तो फिर अन्य मनुष्यों को कौन भेजता है? वह पैग़म्बरों को ही क्यों व किस लिये भेजता है? कुछ लोग कहेंगे कि पैग़म्बर पाप को, बुराई को मिटाने के लिये भेजे जाते है। यह भी कोई तर्क नहीं है। ईश्वर तो सभी को पुण्य कर्म करने व पाप से बचने व भिड़ने की ही सत्प्रेरणा करता है।

यदि नबियों से वही सब काम करवाता है तो इसमें किसी पैग़म्बर का बड़प्पन ही क्या हुआ? कठपुतली का नाच अच्छा है तो इसमें विशेषता कठपुतली की नहीं, नचाने वाले की है।

सच बात तो यह है कि पैग़म्बरवाद की मान्यता **अवतारवाद का मध्य एशियाई संस्करण है।** वेद विमुख हिन्दू ने ईश्वर को धरती पर उतारा और पैग़म्बरवादी मतों ने पाप, अनाचार व धर्म की ग्लानि से जूझने के लिए परमात्मा को अपने दूत, पूत, पैग़म्बर या वायसराय भेजने के लिये विवश किया। राजा, महाराजा लोग भी तो गड़बड़ विद्रोह दबाने के लिये अपने किसी सामन्त, सूबेदार या सेनापति को भेजा करते हैं।

इस सारी सोच का आधार ईश्वर की विश्व से और विश्व की

ईश्वर से दूरी की हास्यास्पद व मिथ्या मान्यता है।

जब से सृष्टि बनी है तब से संसार में अनेक महापुरुषों ने जन्म लिया है। आगे भी महापुरुषों का जन्म होता रहेगा। अनेक ऋषि अब तक जन्म ले चुके हैं। भविष्य में भी ऋषियों, मुनियों का जन्म होता रहेगा। यह भी ठीक है कि नित्य प्रति तो ऋषि आते नहीं। परन्तु जितने भी ऋषि अब तक आ चुके उनमें से एक भी ऋषि ने आज तक यह दावा नहीं किया कि मुझे परमेश्वर ने भेजा है।

न ही किसी ऋषि ने आज तक यह कहा है कि मेरे जन्म से पूर्व जो ईश्वरीय ज्ञान, नियम या व्यवस्था थी वह सब निरस्त हो गई है। मैं नया नियम लेकर आया हूँ।

सब ऋषियों ने वेद को स्वतः प्रमाण, ईश्वर का ज्ञान, धर्म का आदि स्रोत, धर्म का मूल व नित्य ईश्वर का नित्य ज्ञान माना है। इसमें कोई भी अपवाद नहीं है।

यह वैदिक धर्म का अन्य मतों से एक बहुत बड़ा मौलिक भेद है। सब ऋषियों का यह दृढ़ मत है कि ईश्वर का कोई भी नियम निरस्त नहीं हो सकता। ईश्वर नये-नये नियम न बनाता है और न बना सकता है। वह प्रभु पूर्ण है। उसके ज्ञान में कोई घटा-बढ़ी हो ही नहीं सकती। वह प्रभु निर्दोष है उसके दिये गये वेद ज्ञान व सृष्टि नियमों में भी कोई दोष न था, न है और न होगा। प्रभु की सृष्टि में कभी भी कोई नियम जन्म नहीं लेता। मनुष्य नये-नये नियम बनाते हैं। मनुष्यों के नियम ही टूटते, बदलते व बिगड़ते हैं।

अजन्मा अनादि प्रभु के गुण, कर्म व स्वभाव सब अनादि हैं। उसका ज्ञान भी अनादि है सो नया नियम कहाँ से व कैसे पैदा हो?

दो+दो=चार होते हैं।

अग्नि ऊपर को ही उठती है।

जल नीचे की ओर ही बहता है।

ये नियम कब जन्मे? इनका आविष्कार किसने किया? इन नियमों की आयु कितनी है?

सब जानते हैं कि ये नियम अनादि हैं, नित्य हैं। जब से सृष्टि

है ये तब से हैं।

वैदिक धर्म का अन्य मतों से यह एक मौलिक भेद है। जिसने यह सत्य हृदयंगम कर लिया, यह समझो कि वह भ्रान्तियों के भँवर से पार निकल गया। संसार की अनगिनत भ्रान्तियों का उन्मूलन इसी एक सत्य को समझने से हो जाता है।

इस वैदिक सिद्धान्त की पुष्टि में हम केवल इतना ही कहेंगे कि मनुष्य के घरों के, वाहनों के, वस्त्रों के, व अन्य भोग सामग्री के माडल तो बदलते ही रहते हैं परन्तु मनुष्य, गाय, घोड़ा, हाथी, सिंह, सर्प, तोता, मोर जैसे पहले उत्पन्न होते थे वैसे ही आज होते हैं। इनकी आकृति में भी कुछ परिवर्तन नहीं हुआ। इसका कारण यह है कि ये पूर्ण परमेश्वर की कृतियाँ हैं। यह निर्दोष रचना है। इनके माडल दोष रहित हैं इन में सुधार व विकास की सम्भावना ही नहीं। ईश्वर का विधि-विधान अटल है। प्रभु की एक-एक कृति (Model) इस दृष्टि से पूर्ण (Perfect) है। इसी लिये आस्तिकों की यह मान्यता रही है कि पूर्ण से जो कुछ भी उत्पन्न हुआ, वह पूर्ण अर्थात् दोषरहित है।

ईश्वर से निकटस्थ सम्बन्ध :
कर्मफल तथा पुनर्जन्म ही है
जहाँ जीव का ईश्वर से
निकटस्थ सम्बन्ध होता है।

पाँचवाँ अध्याय

त्रैतवाद

"If permanent self-hood is an illusion, the notion of duty loses all its significance"

—श्री र० रामानुजाचार्य

अर्थात् यदि नित्य जीव एक भ्रम मात्र है तो फिर कर्त्तव्य का क्या महत्व रहा?

ईश्वर की सत्ता को स्वीकार करने वाले अवैदिक मत मूलतः अद्वैतवादी हैं। वैदिक धर्म का इनसे मौलिक भेद यह है कि अनादि वेद त्रैतवादी है। यद्यपि इस्लाम व ईसाई मत शंकराचार्य जी के अद्वैतवाद को नहीं मानते तथापि इन दोनों मतों की सृष्टि उत्पत्ति सम्बन्धी मान्यता अद्वैतवाद का ही विकृत अदार्शनिक या परिष्कृत रूप है। हैं ये भी अद्वैतवादी। जैसा कि पहले स्पष्ट किया जा चुका है मत-मतानतरों ने ईश्वर के स्वरूप को समझने का यत्न ही नहीं किया। केवल कल्पनाओं से कार्य लिया। सृष्टि उत्पत्ति के विषय में अवैदिक मतों की बहुत सारी भ्रान्तियों का मुख्य कारण ईश्वर के स्वरूप का यथार्थ ज्ञान न होना ही है।

अथर्ववेद में परमेश्वर के स्वरूप का वर्णन करते हुए आता है—

'स एष एक एकवृदेक एव।[1]

अर्थात्—वह ईश्वर एक है निश्चय से एक ही है। वह एक वृत् है मिश्रण नही। अमिश्रित है। न कोई उससे बना है और न वह किसी से बना है। बस मत-मतान्तरों ने मूल में यही भूल कर दी। वे वैदिक धर्म की दार्शनिक सच्चाई को न समझ सके। मतों ने 'ईश्वर सब कुछ है' यह कल्पित मान्यता अपना कर यह भ्रान्ति प्रसारित कर दी कि ईश्वर ने बिना किसी उपादान कारण के सृष्टि

1. द्रष्टव्य अथर्ववेद 13-4-20

का सृजन कर दिया। फ़ारसी के एक सूफ़ी कवि ने लिखा है:–

'हर चे बीनी बदां कि मज़हरे ओस्त।'

अर्थात् जो कुछ तू देखता है यह जान ले कि सब उसी परमेश्वर की झाँकी है, उसी से व्यक्त हुआ है। भारत के नवीन वेदान्ती तो अद्वैतवादी होने के कारण ब्रह्म के अतिरिक्त जीव व प्रकृति की सत्ता नहीं मानते। इस्लाम व ईसाई मत भी सृष्टि के उपादान कारण प्रकृति की व जीव की स्वतन्त्र सत्ता नहीं मानते। ये दोनों मत जीव व प्रकृति को ईश्वर से पैदा हुआ मानते हैं।

इस भ्रान्ति ने बड़े-बड़े विचारशील लोगों को नास्तिक बना दिया है। प्रत्येक जिज्ञासु के मन में यह शंका उठती है कि सृष्टि की रचना कैसे हुई? मतवादी उत्तर देते हैं परमेश्वर ने जगत् को बनाया हैं। जब पूछा जाता है कि किससे बनाया तो उत्तर देते हैं अपने में से बनाया अथवा अपनी शक्ति से उसने अभाव से सृष्टि का सृजन किया। भारत के महान् क्रान्तिकारी व विख्यात विद्वान् लाला हरदयाल एम० ए० इन्हीं भ्रम मूलक विचारों के कारण नास्तिक बने। उन्होंने प्रश्न पूछा कि यदि भगवान् ने सृष्टि का सृजन किया है तो फिर भगवान् को किसने जन्म दिया? भगवान् कहाँ से आ टपका? उसकी उत्पत्ति कब हुई?[1]

वैदिक धर्म का तो युक्तियुक्त उत्तर है कि परमात्मा, जीव व प्रकृति तीनों अनादि हैं। तीनों को किसी ने जन्म नहीं दिया। प्रभु ने सृष्टि का सृजन किया है, इसे अपने से या अभाव से पैदा नहीं किया।

विज्ञान आज इस वैदिक सिद्धान्त को मान चुका है–

Matter can neither be created nor it can be destroyed.

न प्रकृति को जन्म दिया जा सकता है न यह नष्ट की जा सकती है।

महान वैज्ञानिक न्यूटन का मत

जगत्-प्रसिद्ध वैज्ञानिक न्यूटन का गति का पहला सिद्धान्त यह है कि–

1. द्रष्टव्य Hints For Self Culture.

"Everybody continues its state of motion or rest unless some external force is applied on it."

अर्थात् प्रत्येक पदार्थ अपनी गति या विराम की अवस्था में रहता है जब तक उस पर कोई बाह्य बल कार्य न करे।

जड़ प्रकृति गतिहीन है। यह गति नहीं कर सकती। यह विज्ञान व मनोविज्ञान दोनों को स्वीकार है। परन्तु विज्ञान मानता है कि सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी आदि सब लोक गति करते हैं। परमाणु Atom में भी गति होती है। इस गति का कारण क्या है? न्यूटन का कहना है कि जब तक बाहर से शक्ति न दी जाए जड़ वस्तुएँ गति नहीं कर सकतीं। सारा संसार गतिमान है। परमाणु में भी गति है तो फिर बाहर से इनको कौन गति दे रहा है?

मनुष्य में तो यह सामर्थ्य नहीं। न्यूटन के अनुसार यह गति कोई और शक्ति दे रही है। वह सर्वशक्तिमान् भगवान् है। वेद ने इसी प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा है:–

ओ३म् तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वन्तिके तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य वाह्यतः।।[1]

अर्थात् वह ब्रह्म सब को गति देता है परन्तु स्वयं गति नहीं करता। वह दूर से दूर और निकट से निकट है। वह ब्रह्माण्ड के अन्दर और बाहर व्याप्त है। जब से प्रकृति है तब से परमाणुओं में गति है। प्रकृति कब से है? विज्ञान वेद के साथ स्वर मिला कर कह रहा है प्रकृति न उत्पन्न हो सकती है न नष्ट हो सकती है अर्थात् अनादि है। जब प्रकृति अनादि है तो गति देने वाली शक्ति भगवान् को भी अनादि मानना पड़ेगा। वैदिक दर्शन ध्यान पूर्वक समझने से यह प्रश्न पैदा ही नहीं होता कि भगवान् को किस ने पैदा किया? कब पैदा किया?

हम वैदिक धर्मी जब कहते हैं कि परमेश्वर ने हमें पैदा किया है तो हमारा पैदा का अर्थ अभाव से भाव नहीं। हम तो यह मानते हैं कि जैसे कुम्हार मिट्टी से घड़ा बनाता है। जैसे लोहार लोहे से वस्तुएँ बनाता है या खाती लकड़ी से कुर्सी बनाता है ऐसे ही

1. यजुर्वेद 40-5

परमेश्वर ने अनादि जीवों के लिए अनादि प्रकृति से इस सृष्टि का सृजन किया है। जन्म क्या है? इसका उत्तर महर्षि दयानन्द ने दिया है–शरीर से आत्मा के संयोग का नाम जन्म और वियोग मात्र को मृत्यु कहते हैं। शरीर अनादि प्रकृति से निर्मित होता है और इसका संयोग अनादि जीव से जब होता है तो इसी को वैदिक धर्मी उत्पन्न होना मानते हैं।

महान् विद्वान् पं० गुरुदत्त विद्यार्थी का कथन

यदि यह माना जाए कि अभाव से भाव पैदा करने का सामर्थ्य ईश्वर में है तो महान् मनीषी पं० गुरुदत्त जी विद्यार्थी के शब्दों में कहना पड़ेगा–

"Hence there are two kinds of nothing. Firstly, the ordinary nothing from which nothing comes out, secondly, this peculiar nothing which gives rise to something. Now, what so-ever has many kinds, is not nothing but something."[1]

अभाव दो प्रकार का हो गया। एक वह अभाव जिससे अभाव ही पैदा हो सकता है और एक वह अभाव जिससे भाव पैदा हो सकता है। जब अभाव के दो प्रकार मान लिये तो फिर यह अभाव नहीं किसी वस्तु का भाव हो गया।

श्री शंकराचार्य आदि कुछ भारतीय दार्शनिकों के अनुयाइयों ने यह भ्रम फैला रखा है कि वेद आदि सत्य शास्त्र अद्वैतवाद का प्रतिपादन करते हैं। ऐसा कहने वाले सत्य की निर्मम हत्या करते हैं। वेदान्त शास्त्र का वचन है–

'जन्माद्यस्य यतः।'[2]

जिससे इस जगत् का जन्म, स्थिति और प्रलय होता है वही ब्रह्म जानने योग्य है।

प्रश्न यह है कि यदि वेद तथा आर्ष ग्रन्थों ने केवल ब्रह्म की ही सत्ता को माना है तो ब्रह्म द्वारा जन्म किसका होता है? स्थिति और प्रलय किस की?

---

1. Wisdom of The Rishis. Page 261
2. द्रष्टव्य वेदान्त दर्शन

आर्य ऋषियों ने ईश्वर को सर्वज्ञ माना है। सर्वव्यापक माना है तथा सर्वशक्तिमान् माना है। यदि ईश्वर के सिवाय किसी और की सत्ता ही नहीं तो ईश्वर को सर्वज्ञ, सर्वव्यापक तथा सर्व-शक्तिमान् कहना लिखना व मानना व्यर्थ है। महान् आर्य मनीषी श्री पं० गंगाप्रसाद जी उपाध्याय ने इसी विचार को व्यक्त करते हुए लिखा है–

सर्वज्ञता का अर्थ क्या है?

"What do these words ominiscience, Omnipresence and omnipotence mean?" Instead of all-knower, all-present and all-powerful, you should say nothing-knower, nothing-pervader and possessor of no power. What did he know when there was nothing? Where was he present when there was no where? What does the superlative most powerful mean when there was none to compare with?[1]

श्री स्वामी सत्यप्रकाश जी ने भी इसी प्रश्न पर विचार करते हुए एक सूक्ष्म तर्क उपस्थित किया है। वह लिखते हैं–

"If there is nothing to change, mould or transform, the agency which does so loses the very significance as the changer, moulder or transformer."[2]

अर्थात् यदि परिवर्तित होने, बदलने व नवरूप लेने को कुछ है ही नहीं तो फिर परिवर्तन करने, बदलने या नवरूप देने वाली सत्ता का तो अस्तित्व ही नहीं रहता ऐसी सत्ता का फिर महत्व ही क्या रहा?

कुछ लोगों को आज अद्वैतवाद का फ़ैशन हो गया है। वह समझते हैं कि अद्वैतवाद की चर्चा करके अथवा अद्वैतवाद में विश्वास व्यक्त करके वह दार्शनिक के रूप में महिमा प्राप्त कर सकते हैं। वह सोचते हैं कि इससे दार्शनिक जगत् में बड़प्पन मिल जाएगा। ऐसा सोचने वालों से डॉक्टर सत्यप्रकाश जी ने एक प्रश्न पूछा है–

1. Philosophy of Dayananda Para 118
2. Critical Study of Philosophy of Dayananda Page 261

अद्वैतवादी से बड़ा शून्यवादी

"If by reduction to unity, one can be a better philosopher, perhaps the still better would be he who reduces everything to an Absolute Zero. If the object of knowledge is non-existence, why not believe in non existence of the subject also."[1]

अर्थात् यदि घटाकर एक की ही सत्ता को मानने से कोई बड़ा दार्शनिक बन सकता है तो सर्वथा शून्यवाद को मानने वाला तो और भी बड़ा तत्त्ववेत्ता होगा। यदि जानने वाले पदार्थ की कोई सत्ता नहीं (अभाव है) तो फिर जानने वाले-ज्ञाता की सत्ता का अभाव क्यों न मानें?

यह भी समझ लें कि यदि मैं या आप (जीव) न होते तो मेरा भगवान् (My God) कौन कहता?

माया बिना ब्रह्म का कार्य नहीं चलता

भारत के अद्वैतवादी कहा करते हैं कि ब्रह्म सत्य है जगत् मिथ्या है। जगत् में ब्रह्म के अतिरिक्त जीव या प्रकृति की सत्ता को स्वीकार करना इन ब्रह्मवादियों की दृष्टि में भ्रम है। परन्तु जगत् की दार्शनिक शंकाओं का समाधान जब अकेले ब्रह्म से वे नहीं कर पाते तो ब्रह्म के साथ माया को भी घसीट लाते हैं।

डॉ० सत्यप्रकायश जी ने बहुत सुन्दर लिखा है:-

"Without the help of the indescribable Maya the neo-Vedantic doctrine cannot be substantiated."[2]

अर्थात्-व्याख्या न की जा सकने वाली माया के बिना नवीन वेदान्त का सिद्धान्त पुष्ट नहीं किया जा सकता।

श्री पं० गंगाप्रसाद जी उपाध्याय ने अद्वैतवादी नवीन वेदान्तियों के मत की अपनी छोटी बड़ी कई दार्शनिक पुस्तकों में बड़ी रोचक, सरल व सरस शैली में चर्चा की है। ये अद्वैतवादी जगत् को मिथ्या व स्वप्न कहते हैं। उपाध्याय जी ने लिखा है।

1. Critical Study of Philosophy of Dayananda Page 264-65
2. Critical Study of Philosophy of Dayananda

किसान खेती करता है, स्वप्न में नहीं जागते हुए

"The farmer who is exercising his best energy in tilling the soil and sowing seeds, knows well that the farm is a hard reality. He knows that by sowing the seeds and pursuing tillage he will in the end get the true harevest, not illusory like a dream object. Some of our philosophers constantly sang of their philosophy of dream, but common people of the world turned a deaf ear to their preachings. This is all good because thus the work of the world goes on as usual on the lower strata of life. The spell of dream could grip only a few persons of higher position."[1]

इसका सारांश यह है कि कृषक जो पूरी शक्ति से हल चलाता है, खेती करता है वह भली भाँति जानता है कि खेत एक कठोर सत्य है। वह जानता है कि उसके परिश्रम का फल उसे एक वास्तविक फ़सल में मिलेगा। उसके परिश्रम का परिणाम एक स्वप्न या भ्रम के रूप में न होगा। हमारे कुछ तत्त्ववेताओं ने अपने स्वप्न दर्शन के बहुत राग गाए परन्तु संसार के जन साधारण पर इसका कुछ भी प्रभाव न पड़ा। यह अच्छा ही हुआ। इससे संसार का सारा व्यवहार ठीक रूप से चल रहा है। केवल कुछ उच्च वर्ग के लोगों पर ही स्वप्न का जादू है। साधारण जनता पर नहीं।

राष्ट्ररक्षा, उपकार व सुधार कार्य जागने वाले करते हैं स्वप्न लेने वाले नहीं।

जो लोग संसार को स्वप्न ही समझते हैं उनको चाहिए कि वे चारपाई लेकर विश्राम करें। स्वप्न सोने वालों को आता है। सोये हुए लोग किसी देश व समाज का भला नहीं कर सकते। वे अन्याय, कलह, कुल्टाई व बुराई से लड़ाई नहीं लड़ सकते। बुराई से लड़ाई तो जागने वाले ही कर सकते हैं। श्री पं० गंगाप्रसाद जी उपाध्याय

1. The world As we view It. Page 6

ने इसी प्रसंग में लिखा है–

"Similarly if all the hardships of life are a mere dream, then the best remedy is to wait for the moment that our eyes are open and we come into wakeful state."[1]

अर्थात्–यदि जीवन के सब दुःख, कष्ट केवल एक स्वप्न ही हैं तो फिर हमें उस घड़ी की प्रतीक्षा करनी चाहिये जब हमारे नयन खुले हों और हम जागृत अवस्था में हों।

व्यक्ति और समष्टि का कल्याण जागरण से ही होता है। ज्ञान–मान, आन–शान और धन–धान्य उन्हीं को प्राप्त होते हैं जो जागते हैं। राजनीति शास्त्र की उक्ति है–

'Eternal vigilance is the price of liberty.'

अर्थात् निरन्तर जागरण ही स्वतन्त्रता का मूल्य है। कल्याणी वाणी वेद में आता है–

त्रातारो देवा अधि वोचता नो मा नो निद्रा ईशत मोत जल्पिः।
वयं सोमस्य विश्वह प्रियासः सुवीरासो विदथम् आ देवम्॥[2]

इस वेद मन्त्र में भी यही प्रार्थना की गई है कि बकवाद व प्रमाद हम पर शासन न करें। जीवन में सफलता इसके बिना सम्भव ही नहीं परन्तु स्वप्नवादी यह रहस्य क्या जानें? जो लोग सृष्टि से पूर्व केवल एक ईश्वर ही की सत्ता मानकर चलते हैं वे मतवादी लोग इस प्रश्न का उत्तर देने से कतराते हैं कि यदि सृष्टि से पूर्व केवल एक ईश्वर की सत्ता थी तो उसने संसार की रचना क्यों की? किसके लिए की? रचना का उद्देश्य क्या है? इन प्रश्नों का उत्तर इन मतों के पास है ही नहीं। क्या सृष्टि उसने अपने लिये बनाई या औरों के लिए? यदि अपने लिए बनाई तो उसमें क्या कमी थी? यदि औरों के लिये बनाई तो वे और कौन थे?

इन मतों की सारी मान्यताएँ मूल की इस भूल के कारण निर्मूल एवं निःसार हैं, परस्पर विरोधी हैं तथा अनेक संशय पैदा करने वाली हैं। इस्लाम व ईसाई मत ईश्वर को दयालु मानते हैं। दयालु कैसे? वैदिक दर्शन से उत्तर उधार लेकर ये अवैदिक मत इस शंका

1. The world as we view It. page 7
2. ऋग्वेद 8-48-14

का उत्तर देते हैं कि परमेश्वर ने हमारे लिए अनेक पदार्थ बनाए हैं। हमारे कल्याण के लिए सारा संसार बनाया है अतः वह दयालु है परन्तु प्रश्न फिर भी वही बना रहता है कि हमारा कल्याण यह कहने से पूर्व हमें यह बताया जाये कि हम कौन? हम कहाँ से आ गये? जब केवल ईश्वर ही की एक अनादि सत्ता थी तो हमारे कल्याण की खुजली उसके मस्तिष्क में कैसे हो गई?

श्री पं० गंगाप्रसाद जी उपाध्याय ने बड़े सुन्दर शब्दों में लिखा है–

"First create a hungry soul, then let him cry of hunger, and then provide food for him. Why all this fun? Such a belief may be a pious musing but not a philosophy."[1]

अर्थात्–पहले भूखे जीवों को पैदा करके फिर भोजन प्रदान करना। यह क्या तमाशा है? भले ही यह एक पवित्र विचार हो परन्तु यह कोई दर्शन नहीं।

अन्य मतों व वैदिक धर्म में एक मौलिक भेद यह है कि अवैदिक मतों में ईश्वर को संसार का केन्द्र बिन्दु माना गया है। जीव का कोई महत्त्व नहीं। जीव की सत्ता तो विवश होकर मतों को माननी पड़ती है। जीव की स्वतन्त्र सत्ता मतवादी नहीं मानते। जब मतों का भगवान् सृष्टि बना लेता है तो जीव बीच में धक्के से आ टपकता है या घुस जाता है। वैदिक धर्म में प्रकृति व जीव का अलग- अलग अस्तित्व है। इनकी सत्ता ईश्वर पर अवलम्बित नहीं। परमेश्वर सृष्टि का कर्त्ता है। जीव व प्रकृति का नहीं। जीव का वैदिक दर्शन में अपना महत्त्व है।

मत-मतान्तरों में जीव की स्वतन्त्र सत्ता न होने के कारण मतवादियों के मन में स्वयं अनेक शंकाये हैं जिनका समाधान उनके लिये एक समस्या है। एक फ़ारसी कवि ने लिखा है–

दरम्याने केरे दरया तख़्ता बन्दम करदायी।
बाज़ में गोई कि दामन तर मकुन हुश्यार बाश॥

भाव यह है कि हे भगवान् अजगर-सम लहरों वाले संसार रूपी सागर में, मेरे साथ बोझ बांधकर तूने मुझे पैदा किया है और फिर

1. Vedic Philosophy, Page 9

कहता है कि सावधान रहना कपड़े न भीगें। अर्थात् संसार में हम दुर्बल जीवों को तूने पैदा किया और हम से आशा करता है कि हम निष्पाप रहें, यह तेरी मूर्खता है।

पुरुष एक या अनेक?

नवीन वेदान्त के कई रूप हैं। श्री शंकराचार्य का अद्वैतवाद श्री स्वामी रामतीर्थ से भिन्न है। कविवर रवीन्द्र का अद्वैतवाद डॉ० राधाकृष्णन से न्यारा है। कुछ अद्वैतवादी जीव को ब्रह्म का अंश मानते हैं। कुछ जीव को ही ब्रह्म मानते हैं। कुछ जीव को ब्रह्म का प्रतिबिम्ब मानते हैं। वैदिक धर्म की यह मान्यता है कि पुरुष अर्थात् जीव असंख्य हैं।

एक विद्वान् ने लिखा है "अपनी बाबत तो किसी को सन्देह हो नहीं सकता। यह सन्देह ही पृथक् सत्ता (Individuality) का प्रमाण है।"

"क्या मेरे बिना भी कोई और है? सारा जीवन व्यवहार अनेकवाद का पोषक है। लेख के लिए सामग्री, ज्ञान, लेखनी व पाठक चाहिए। लिखते भी तो इसी लिए हैं कि दूसरे पढ़ें।"

"जीवन यात्रा सबकी एक साथ न आरम्भ हुई न समाप्त। क्रियायें भिन्न-भिन्न, क्रिया के साधन भिन्न, स्वभाव भिन्न, चरित्र भिन्न, कोई जीवन दूसरे की सर्वांश में प्रतिलिपि नहीं।"[1]

"In this world of action we start with difference, our rate of progress is different and consequently we die differently."[2]

संसार की कर्मभूमि में हम भिन्नता से आरम्भ करते हैं। हमारी प्रगति की गति भी भिन्न-भिन्न है और परिणाम स्वरूप हम मरते भी भिन्न-भिन्न प्रकार से हैं।

यदि जीव ब्रह्म का अंश है तो इसमें ब्रह्म के गुण क्यों नहीं हैं? जीव अल्पज्ञ है ब्रह्म सर्वज्ञ है। यदि जीव ही ब्रह्म है तो पाप कौन करता है? यदि जीव ब्रह्म है तो संसार में दुःख, द्वेष, क्लेश व पाप क्यों हैं? इन प्रश्नों का उत्तर अद्वैतवाद के पास नहीं। जीव

1. डॉ० दीवानचन्द कृत दर्शन संग्रह पृष्ठ 40 का सारांश
2. A Critical Study of Philosophy of Dayananda

की स्वतन्त्र सत्ता को स्वीकार किये बिना संसार की पहेली समझ में नहीं आ सकती।

आज के विश्व में मानवीय अधिकारों की (Human Rights) विशेष रूप से मानव की स्वतन्त्रता की दुहाई बहुत दी जाती है। प्रत्येक राजनैतिक दल व नेता दिन-रात स्वतन्त्रता का राग अलाप रहा है। स्वतन्त्रता किस के लिये? उत्तर है, मानव के लिये। मानव की स्वतन्त्रता के लिये सब शोर मचाते हैं परन्तु मानव की स्वतन्त्रता जीव की स्वतन्त्र सत्ता का सिद्धान्त माने बिना एक थोथा नारा है। महान् दार्शनिक श्री आचार्य चमूपति जी ने लिखा है-"यदि एक मात्र परमात्मा सृष्टि का कारण हो तो पाप का बीज भी वही ठहरेगा। अतः जीव को अनादि स्वतन्त्र कर्त्ता मानना चाहिये। स्वतन्त्रता पैदा की जाए तो वह स्वतन्त्रता न होगी।"

अकेली प्रकृति और अकेली चेतन सत्ता :
जड़ प्रकृति में
गति और क्रम कहाँ से आयेगा?
और अकेली चेतन सत्ता
किसमें गति उत्पन्न करेगी?

छठा अध्याय

जगत् का केन्द्र-बिन्दु

हम पाँचवें अध्याय में यह बता चुके हैं कि वैदिक दर्शन अथवा वैदिक धर्म इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को 'जीव केन्द्रित' मानता है। वैदिक धर्म का अन्य मतों से यह एक मौलिक भेद है। संसार के सभी मत, पंथ सृष्टि को 'ईश-केन्द्रित' मानते हैं। किसी भी धार्मिक ग्रन्थ को पढ़ जाइये आप को पता चलेगा कि सारी रचना परमेश्वर ने अपनी इच्छा से और अपने लिये ही की है। किसी धर्म गुरु, धर्माचार्य या आज के नवीन भगवानों के उपदेश, प्रवचन सुनने-पढ़ने से आप इसी निष्कर्ष पर पहुँचेंगे कि परमात्मा ने अपने लिये ही जगत् को बनाया।

ईश्वर की भक्ति, उपासना व प्रार्थना का प्रयोजन क्या है? हम पीछे बता चुके है कि मत, पंथों की दृष्टि में ईशोपासना का प्रयोजन प्रभु को प्रसन्न करना है। हमने नज़ीर अकबर इलाहाबादी की दो पंक्तियाँ उद्धृत की हैं। पाठकों को अवैदिक मतों का दृष्टिकोण हृदयंगम करवाने के लिये दूसरी पंक्ति यहाँ फिर दोहराते हैं-

'सच्च तो यह है कि ख़ुशामद से ख़ुदा राज़ी है।'

यह मत समझें कि केवल मुसलमान व ईसाई ही ऐसा मानते हैं। पौराणिक हिन्दुओं व अन्य अवैदिक मतों का भी ऐसा ही विश्वास है।

अवैदिक पंथों की ऐसी सोच स्वाभाविक ही है। जब ये सब यह मानकर चलते हैं कि सृष्टि रचना से पूर्व केवल एक ही सत्ता थी और वह था परमात्मा; तो फिर जगत् की रचना अपने लिये ही तो की होगी? **कोई और तो था ही नहीं जिसका ईश्वर को उपकार, सुधार, कल्याण व उत्थान करना था।**

लीजिये हम अपनी ओर से कुछ भी न कहते हुये एक मुस्लिम कवि की दो पंक्तियाँ यहाँ देते हैं-

दर्दे दिल के वासते पैदा किया इनसान को
वरना तायत के लिये कुछ कम न थी कर्रोबियाँ।

अर्थात् परमात्मा ने अपने हृदय की पीड़ा (Heart Disease) के लिये मनुष्य को उत्पन्न किया अन्यथा उसकी सेवा के लिये तो पहले से ही अनेक फ़रिश्ते (Angels) थे। इस आशय के और भी अनेक प्रमाण हम यहाँ दे सकते हैं परन्तु अनावश्यक विस्तार से बचने के लिये इतना ही पर्याप्त है।

हमने अनेक कीर्तनकारों को ऐसे भजन गाते सुना है जिनमें मनुष्य को भक्ति भजन की प्रेरणा देने के लिये यह कहा जाता है कि हे मनुष्य! क्या तू इस बात को भूल गया कि जन्म से पूर्व माता के गर्भ में तुझे उल्टा लटकाया गया था। तब ये यातनायें सहते हुए तूने प्रभु को यह आश्वासन दिया था कि मैं नर तन पाकर तेरा भजन करूँगा। इसका भाव क्या है? यही कि परमेश्वर हमारी भक्ति का भूखा है। उसने अपनी स्तुति सुनने के लिए हम मनुष्यों को गर्भावस्था में उल्टा लटका कर **यातनायें देकर भक्ति, भजन का आश्वासन लिया।**

ये सब कपोल कल्पित बातें हैं। वेद शास्त्रों, उपनिषदों व गीता आदि में उल्टे लटकाकर 'भक्ति करूँगा' ऐसा आश्वासन लेने का कोई प्रमाण या संकेत हमें तो मिला नहीं।

वैदिक मान्यता यह है कि स्तुति, प्रार्थना व उपासना का प्रयोजन आत्मोन्नति है। हम आत्म-शान्ति, आत्म-सुधार व कल्याण के लिये भक्ति करते हैं। पूर्ण परमात्मा को हमारी भक्ति की कोई आवश्यकता नहीं। ईश्वर ने जगत् में केवल मनुष्य को ही तो नहीं बनाया। जल, वायु, नदियाँ, पर्वत, पशु, पक्षी, वनस्पतियाँ, सूर्य व चन्द्र आदि सबका निर्माण उसी परमपिता ने किया है। इनका वह प्रभु अपने लिये क्या लाभ उठाता है?

इन सबका उपयोग, प्रयोग व दुरुपयोग मनुष्य ही तो करता है। अन्य जीव जन्तु भी सृष्टि का उपयोग करते हैं। परमात्मा का जगत् की रचना में कतई कोई स्वार्थ नहीं। इसलिये यह कहना कि उसने मनुष्य को गर्भ अवस्था में उल्टा लटकाकर भक्ति करने का

आश्वासन लिया सर्वथा निरर्थक है। ईश्वर ने सब कुछ दिया है इसके लिये कृतज्ञता का प्रकाश करना भी आत्मोन्नति का साधन है। भक्ति-भजन, दुर्गुण, दुर्बलतायें दूर करने के लिये हैं। ईश्वर का गुण-कीर्तन अपने गुण, कर्म व स्वभाव के सुधार के लिये है न कि परमात्मा को प्रसन्न करने के लिये। वह प्रभु न रुष्ट होता है, न कभी खीजता है और न प्रार्थना सुनकर फूलकर कुप्पा होता है। वह तो पूर्ण है। वह परमानन्द है। वह एक रस है। उसमें मानवीय दुर्बलताएँ नहीं। उस सच्चिदानन्द स्वरूप पर मानवीय दुर्बलताएँ लादना मनुष्य की भयंकर भूल है।

वेद किसके लिये? मनुष्यों के कल्याण के लिये। यज्ञ, हवन किसके लिये? जीवों के कल्याण के लिये। जगत् के भोग किसके लिये? जीवों के लिये। प्रकृति भी तो अपने आप में पूर्ण है। उसे न ज्ञान है। न सुख है और न दुःख है। प्रकृति को भी कुछ नहीं चाहिये। प्रकृति के अस्तित्व की सार्थकता इसी में है कि जीव उसका उपभोग करते हैं। परमात्मा के अस्तित्व की सार्थकता इसमें है कि वह स्वभाव से उपकार करता है। मनुष्य उसकी उपासना से मोक्ष के परमानन्द को प्राप्त कर सकता है। उसका सद्ज्ञान वेद हमें त्रयताप से बचाने वाली औषधि है। इस प्रकार हम देखते हैं कि वैदिक धर्म ईश-केन्द्रित नहीं है। यह जीव केन्द्रित है। यह वैदिक धर्म का अन्य मतों से एक मौलिक भेद है।

यह महर्षि दयानन्द की एक मौलिक सूझ है कि उन्होंने वैदिक धर्म की यह विशेषता हमारे सामने रखी और श्री पं० गंगाप्रसाद जी उपाध्याय के इस उपकार का वर्णन हम किन शब्दों में करें जिन्होंने करुणासागर दयानन्द की इस देन की ओर मानव समाज का ध्यान आकृष्ट किया। उन्होंने अपनी अनूठी शैली में वैदिक धर्म के इस मर्म को हमें हृदयङ्गम करवाया। **आर्य समाज के लोगों ने ऋषि के तप, त्याग, बलिदान, योगबल व अपूर्व विद्वत्ता को स्कूलों, कालेजों की ईंटों व भवनों का पर्याय प्रचारित कर दिया। यह एक ऐसा पाप है जिसे हम ऋषि की**

1. ऋग्वेद 1-101-5

हत्या कहेंगे। दयालु प्रभु की अपार दया से पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय जी ने एक दार्शनिक रहस्य, एक गूढ़ परन्तु सरल सत्य का हम पर प्रकाश कर दिया। मैं समझता हूँ कि अब किसी को भी यह भ्रान्ति नहीं होगी कि ईश्वर ने अपने लिये सृष्टि का सृजन किया। **सब लोगों को पूर्वाग्रह से मुक्त होकर यह स्वीकार करने में संकोच नहीं होना चाहिये कि जगत् का केन्द्र बिन्दु जीवात्मा है, न कि परमात्मा।**

मनुष्य का सबसे बड़ा दोष क्या है? :

मनुष्य में सबसे बड़ा दोष यह है
कि वह प्रत्येक वस्तु को
अपने लिये बनी हुई समझ लेता है।

सातवाँ अध्याय

ईशोपासना

सब आस्तिकवादी मत, पंथ ईश्वर की उपासना, प्रार्थना व पूजा पर बल देते हैं। वैदिक धर्म में भी स्तुति, प्रार्थना व उपासना का विशेष महत्त्व है। एक आस्तिकवादी व्यक्ति से यह अपेक्षा की जाती है कि वह नित्यप्रति ईश-वन्दना के लिये कुछ समय निकालता ही होगा। हम प्रार्थना, उपासना विषयक मत-पंथों के व वैदिक धर्म के दृष्टिकोण पर छठे अध्याय में भी कुछ विचार कर आये हैं। ऋषि दयानन्द की शिष्य परम्परा के एक गम्भीर विचारक, लेखक व स्वाधीनता सेनानी श्री पं० भीमसेन जी विद्यालंकार ने एक बार अपने एक लेख में लिखा था कि ऋषि दयानन्द ने अपने सद्ग्रन्थों में यत्र-तत्र ईशोपासना पर बड़ा बल दिया है। **ऋषि के दृष्टिकोण व चिन्तन की विशेषता यह है कि उन्होंने प्रार्थना का प्रयोजन औरों से बहुत न्यारा बताया है।**

प्रायः भक्त लोग अपना दुखड़ा लेकर ईशोपासना करते हैं। दुःख ताप से पीड़ित मानव हृदय प्रभु से कोई न कोई माँग करता हुआ भक्ति भजन करता है। यह ठीक है कि दुःखी जीव परमपिता से, पालनहार से, सिरजनहार कर्त्ता से, भर्त्ता से, दीनबन्धु करुणा-सिन्धु से ही त्रयताप के निवारण की विनती करेगा परन्तु यह भी एक सत्य है कि ऐसी विनय या ऐसी भक्ति कोई बहुत उत्कृष्ट नहीं कही जा सकती।

इसी भाव को लेकर कविरत्न प्रकाश जी ने उपासना के ऊँचे वैदिक आदर्श को इस पंक्ति में प्रस्तुत किया था-

'मैं तुझ से तुझे प्राणधन चाहता हूँ।'

कुँवर सुखलाल ने भी कभी इसी भाव को इस पद्य में व्यक्त किया था:-

नहीं कोई भी चाहना और दिल में,
तुझे चाहता हूँ यही चाहना है।

हम मानते हैं कि वेद में अन्न, धन, बल, पौरुष, तेज, ओज, रत्नों, गोधन व सन्तान के लिये भी अनेक प्रार्थनायें हैं परन्तु, वेद में इससे भी कहीं बढ़कर आत्मबल, आत्मोन्नति, हृदय की निर्मलता, बुद्धि की पवित्रता, दुर्गुण-त्याग, निर्भयता, वीरता, सत्कर्मों, परोपकार व गुण सम्पन्नता के लिये प्रार्थनायें मिलती हैं।

सारा संसार जानता है

संसार के सभी सुपठित व प्रबुद्ध नागरिक यह जानते हैं कि वैदिक धर्म में गायत्री मन्त्र को गुरु मन्त्र व महामन्त्र कहा गया है। वेद का कोई भी मन्त्र छोटा वा बड़ा नहीं कहा जा सकता। वेद का एक-एक शब्द ईश्वर प्रदत है और मानव के कल्याण के लिये है तथापि गायत्री मन्त्र की विशेष महिमा क्यों है? इसीलिये यह मन्त्र महामन्त्र कहा गया है कि इसमें सन्मार्ग पर ले चलने वाली, सत्कर्मों का कारण बनने वाली सद्बुद्धि प्रभु से माँगी गई है।

संसार में अनेक धनवान् अपनी सन्तान के लिये अपार सम्पदा, कल कारख़ाने, वाणिज्य व्यापार, भूमि, कोठियाँ व दुकानें छोड़कर जाते हैं परन्तु निर्बुद्धि, मलीन बुद्धिवाली व व्यसनी सन्तान सब कुछ लुटाकर कंगाल हो जाती है। इसके विपरीत विश्व इतिहास ऐसे पुरुषार्थी गुणियों की कहानियों से भरा पड़ा है जो कंगाल परिवारों में जन्मे परन्तु, अपनी सूक्ष्म बुद्धि व पुरुषार्थ से मालामाल हो गये।

ऋषि दयानन्द ने 'विश्वानि देव' मन्त्र को भी विशेष महत्त्व दिया है। इसमें भी तो दुरितों के त्याग व सब प्रकार के सद्गुणों की प्राप्ति की प्रभु से प्रार्थना की गई है। आठ प्रार्थना मन्त्रों में महर्षि ने इसे सबसे प्रथम रखा है।

यह वैदिक धर्म का अन्य मतों से एक मौलिक भेद है। श्रीमद्भगवद्गीता में आता है-

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन।
आर्त्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ।।[1]

अर्थात् चार प्रकार के भाग्यशाली लोग मेरा भजन करते हैं। सबसे पहले तो आर्त्त (दुखिया) जन दुःख मुक्त होने के लिये भक्ति करते हैं। फिर जिज्ञासु जन मेरी भक्ति करते हैं। तीसरी श्रेणी अर्थार्थी लोगों की है और चौथी श्रेणी के भक्त ज्ञानी, ध्यानी लोग हैं।

यह चार श्रेणियाँ भजन तो करती हैं। यह हमें भी मान्य है परन्तु होना तो यह चाहिये था कि जिज्ञासु व ज्ञानी का स्थान पहले होता। आर्त्त व अर्थार्थी की चर्चा तत्पश्चात् होती। विपत्ति के समय तो सभी भगवान् को पुकारते हैं। वे नर उत्तम हैं जो सुख, सुविधा में भी उसको नहीं भूलते।

ऋषि दयानन्द जी ने तो कमाल ही कर दिया जब स्तुति, प्रार्थना व उपासना के फल इस प्रकार से बताये–

(1) ईश्वर में प्रीति, उसके गुण-कर्म-स्वभाव से अपने गुण-कर्म-स्वभाव का सुधारना।

(2) निरभिमानता, उत्साह और सहाय का मिलना।

(3) परब्रह्म से मेल और उसका साक्षात्कार।[2]

पीछे भी एक अध्याय में इसकी चर्चा की है। यहाँ इसे दोहराने का प्रयोजन यह है कि पाठकों के हृदय पर यह अंकित हो जाय कि वैदिक धर्म में प्रार्थना की विशेषता यह है कि यहाँ जीवन-निर्माण, वैदिक भक्ति का प्रयोजन है। आत्म शुद्धि पर यहाँ विशेष बल दिया गया है। हम गीता की शब्दावली में यह कह सकते हैं कि निष्काम भक्ति को प्राथमिकता दी गई है।

यह मत भूलिये कि वेद लोक का तिरस्कार नहीं करता परन्तु लोक व परलोक दोनों के सुधार पर बल देता है। लोक को परलोक से जोड़ता है। भला सत्य, संयम, अपरिग्रह व अहिंसा के पालन के बिना किसी व्यक्ति व जाति का लोक बन सकता है? शौच,

1. भगवद्गीता 7-16।।
2. सत्यार्थप्रकाश सप्तम समुल्लासः।।

सन्तोष व स्वाध्याय लोक व परलोक दोनों को बनाने वाले नियम हैं। सारांश यह है कि वैदिक ईश-वन्दना उपासक में एक नवीन ऊर्जा व स्फूर्ति का संचार करती है। यहाँ लेन-देन व सौदेबाज़ी नहीं है।

ईसाई भाई तो अपनी प्रार्थना में रोटी पहले माँगते हैं। मुसलमान बंधु कुरान के आरम्भिक वाक्य-'बिस्मिल्लाह' 'अल्लाह के नाम' से का प्रयोग कहाँ करते हैं? सारा विश्व जानता है कि मूक पशु-पक्षियों व मछली आदि जन्तुओं को खाने के लिये काटते हुए मुसलमान 'बिस्मिल्लाह' ही पढ़ते हैं। इससे सपष्ट है कि **कुरान को जिस शब्द से आरम्भ किया गया-वह शब्द पेट की प्रार्थना बन गया। यह ईश्वर या कुरान के साथ भी घोर अन्याय है।** कुरान के एक भाष्य 'फ़तह-उल-हमीद' की भूमिका में[1] इसी पर व्यंग्य कसते हुये किसी मुस्लिम कवि का एक पद्य दिया गया है। उस पद्य की दूसरी पंक्ति है-

'तुम छुरी फ़ेर भी दो नाम खुदा का लेकर'

यह दृष्टिकोण का एक मौलिक भेद है। वैदिक ईश-वन्दना पेट को, अर्थ को, लौकिक कामनाओं को महत्त्व देती है परन्तु प्रधानता, प्राथमिकता व मुखता नहीं देती।

यहाँ ईश्वर से प्यार ईश्वर के गुणों के कारण है। वह प्रभु पूर्ण है, आनन्द स्वरूप है, शुद्ध है और पापरहित है इसलिये उसकी स्तुति प्रार्थना व उपासना से जीव आत्मोन्नति करके मोक्ष को प्राप्त करता है।

ऋषि दयानन्द जी ने वैदिक सन्ध्या में वेद का जीवन दृष्टिकोण स्पष्ट कर दिया है। धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष, इन चारों का अपना-अपना महत्त्व है। परन्तु प्रार्थना स्वार्थ स्वरूप नहीं होनी चाहिये। कुछ लोगों ने तो भक्ति को ही हास्यास्पद बना दिया है। लोग प्रार्थना तो क्या करते हैं परमात्मा के सामने अपना माँग पत्र सा रख देते हैं। कुछ लोग इससे भी आगे निकल जाते हैं। वे अपने

1. द्रष्टव्य 'फ़तह-उल-हमीद' पृष्ठ 19

सगे सम्बन्धियों के मरने पर उनकी सद्‌गति की भी ईश्वर से प्रार्थना करते, करवाते हैं। स्मरण रखिये कि **वेदानुसार प्रार्थना कोई सिफारिशी चिट्‌ठी नहीं है।** परमात्मा हमारे कहने पर हमारे किसी सगे-सम्बन्धी के किये कर्मों की अनदेखी करके उसको न तो अच्छा जन्म देगा और न किसी पापी की सद्‌गति ही हो सकती है। स्मरण रखिये–

दुरित जो दूर करेंगे।
पापी जन वहीं तरेंगे।।

पापी तर तो सकता है परन्तु पाप को तजकर। केवल प्रार्थना करने से न कुछ मिलेगा, न कोई तरेगा। **प्रार्थना शुद्धिकरण की व आत्मिक ऊर्जा प्राप्त करने की एक प्रक्रिया है।** यह वैदिक धर्म का अन्य मतों से एक मौलिक भेद है। प्रार्थना करते समय यही विचार भक्त के सामने होना चाहिये। साधना मुख्य होनी चाहिये, साधनों की प्राप्ति गौण ही रहे तो अच्छा है।

प्रबुद्ध पाठक महर्षि दयानन्द की प्रार्थनाओं की अनूठी पुस्तक आर्याभिविनय को पढ़ेंगे तो वैदिक प्रार्थना व उपासना की विशेषताओं व अन्य मतों से वैदिक धर्म का एतद्विषयक मौलिक भेद सब समझ में आ जायेगा। इस पुस्तक के पूर्वार्द्ध की 44वीं प्रार्थना ऋग्वेद के एक मन्त्र से की गई है। इस मन्त्र के अन्तिम शब्द हैं–

'मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे।'[1]

इस पर ऋषि विनय करते हुये लिखते हैं–"सो आओ मित्रो भाई लोगो! अपने सब संप्रीति से मिलके मरुत्वान् अर्थात् परमानन्त बल वाले इन्द्र परमात्मा के सखा होने के लिये अत्यन्त प्रार्थना से गद्‌गद् होके पुकारें। वह शीघ्र ही कृपा करके अपने से सखित्व (परम मित्रता) करेगा, इसमें कुछ सन्देह नहीं।"

विश्व-इतिहास में गत पाँच सहस्र वर्षों में गद्‌गद् होकर परमेश्वर को पुकारने की प्रार्थना करने वाला क्या कोई महात्मा, विचारक व सुधारक हुआ है? यह निर्णय

1. ऋग्वेद 1-101-5

हम अपने पाठकों पर ही छोड़ते हैं। इतिहास प्रेमी व धर्म प्रेमी सज्जन प्रभु ईसा की अन्तिम वेला की पुकार बाईबल में पढ़ लें। वहाँ ईश्वर के इकलौते पुत्र ईसा जी ने परमपिता को उपालम्भ दिया है कि मुझे क्यों छोड़ दिया। पैग़म्बर मुहम्मद जी की अन्तिम वेला की घटनायें हदीसों में खोज लें।

ऋषि दयानन्द जी ने ऊपर जो गद्‌गद् होने की विनय की है वह जीवन में उतारकर भी दिखा दी। विषपान से उनका रोम-रोम फोड़ा बनकर फूट रहा था। वज्र के समान उनकी कुन्दन काया का क्या बना, यह पाठक ऋषि जीवन में पढ़ कर देखें। फिर भी उन्होंने गद्‌गद् होकर अपने प्यारे प्रभु से कहा-

"प्रभु! तेरी इच्छा पूर्ण हो, पूर्ण हो, पूर्ण हो।"

उस वैदिक आदर्श को, उस स्वप्न को ऋषि ने साकार रूप दे दिया। मौलिक भेद दो प्रकार की प्रार्थनाओं में क्या है? यह इस घटना से सुस्पष्ट हो जाता है।

मांसाहारी जन्तु :

मांसाहारी जन्तु
केवल भूख लगने पर ही मारते हैं
मनोविनोद के लिए नहीं।

आठवाँ अध्याय
पाप और पाप का फल

> "An unduly forgiving God has nothing to prevent Him from becoming at times unduly tyrannous. The latter possibility is simply a corollary from the former presumption" -Pt. Chamupati Ji
>
> अर्थात् अनुचित रूप से क्षमा करने वाले परमात्मा को अन्यायी होने से भी कोई नहीं रोक सकता। दूसरी सम्भावना पहली का ही उपसिद्धान्त है।

मतवादी मानते हैं कि उनकी मान्यता मानने से मनुष्य को पाप कर्म का दण्ड नहीं मिलेगा। मतवादी विश्वास मात्र रखने से व्यक्ति को मोक्ष अथवा स्वर्ग का अधिकारी मानते हैं। मत-मतान्तर मनुष्यों को पाप के फल से बचाने का आश्वासन देते हैं। वेद की मान्यता इससे भिन्न है। वेद कहता है–

'पक्तारं पक्वः पुनरा विशाति'[1]

अर्थात् मनुष्य जैसा पकाता है वैसा खाता है। वेद का गम्भीर अध्ययन करने से प्रतीत होता है कि वेद के अनुसार सृष्टि का सबसे बड़ा सिद्धान्त कर्म फल है। इसे कर्म फल सिद्धान्त कहिये या कर्मचक्रवाद कहिये।

श्री पं० सत्यव्रत जी सिद्धान्तालंकार ने लिखा है–

"भौतिक जगत् का आधारभूत नियम कार्य-कारण का नियम है। इसे सब जानते है। कोई कार्य ऐसा नहीं हो सकता जिसका कोई कारण न हो। जिस कार्य का कारण नहीं वह कार्य नहीं, जिस कारण का कार्य नहीं वह कारण नहीं। यह कार्य-कारण नियम जब भौतिक जगत् के स्थान में आध्यात्मिक जगत् में काम कर रहा होता

1. अथर्ववेद 12-3-48

है तब इसे कर्म का सिद्धान्त कहते हैं। कार्य-कारण के भौतिक नियम का आध्यात्मिक रूप ही कर्म है।"[1]

इस कर्म फल सिद्धान्त की सत्यता का इससे बड़ा प्रमाण क्या है कि प्रत्येक मनुष्य की कर्म में प्रवृत्ति है।

प्रमादी से प्रमादी भी कुछ कर्म करता है। कुछ भी न करे तो भी खाता-पीता तो है। यह भी तो एक कर्म है। यदि कर्म फल सिद्धान्त मिथ्या होता तो किसी की भी कर्म में प्रवृत्ति न होती। श्री तुलसीदास ने लिखा है–

कर्म प्रधान विश्व करि राखा।
जो जस करै सो तस फल चाखा।।

'कृतं में दक्षिणे हस्ते जयो मे सव्य आहिताः।'[2]

अर्थात्–कर्म मेरे दायें हाथ में है और विजय बायें हाथ में।

इस सूक्ति का भाव भी यही है कि व्यक्ति अपने किये हुए कर्म के फल के उपभोग और उपयोग से वंचित नहीं रहेगा। व्यक्ति कर्म करे और उसे उसके श्रम का फल न मिले यह शोषण है। यह अव्यवस्था एवं भ्रष्टाचार है। कदाचार, शोषण व भ्रष्टाचार का उन्मूलन केवल वैदिक धर्म के कर्मफल सिद्धान्त से ही सम्भव है।

श्री राजगोपालाचार्य ने लिखा है–

"No act can ever fail to produce its result. Nor can any act produce anything but its true result. It is not possible to do a thing and escape its result."

अर्थात् यह हो नहीं सकता कि कोई कर्म अपना फल पैदा न करे। न ही यह सम्भव है कि एक कर्म अपने वास्तविक फल की बजाय कुछ और पैदा करे। यह असम्भव है कि कोई कर्म करके उसके फल के भोगने से बच निकले।

मतमतान्तरों और वैदिक धर्म में यह एक मौलिक भेद है। कर्मफल सिद्धान्त सम्बन्धी कुछ मौलिक बातों पर आगे चलकर हम विचार करेंगे।

---

1. आर्य संस्कृति के मूल तत्त्व
2. अथर्ववेद 7-50-8

वेद का पवित्रता पर बल

हमने ऊपर बताया है कि मत मतान्तर यह मानते हैं कि मनुष्य किसी व्यक्ति विशेष पर विश्वास या पूजा पाठ से कुकर्मों के दण्ड से बच सकता है। वेद पाप से बचाने का आश्वासन देता है पाप के फल से बचने या बचाने का तो वैदिक धर्म व दर्शन में प्रश्न ही नहीं उठता। वेद कहता है–

'पवित्रवन्तः परि वाचमस्ते।'[1]

अर्थात् पवित्रता के इच्छुक वेद का आश्रय लेते हैं।

यजुर्वेद में कहा गया है–

'माँ पुनीहि विश्ववतः'[2]

अर्थात् मुझे सर्वतः पवित्र कर।

अथर्ववेद में कहा गया है–

'अस्मान् पुनीहि चक्षसे।'

प्रभो! अपने दर्शनों के लिये हमें पवित्र करो। चारों वेदों में मन, वचन एवं कर्म की पवित्रता के लिये सहस्रों प्रार्थनाएँ हैं। वैदिक धर्म प्रभु-प्राप्ति के लिये पवित्रता को आवश्यक मानता है और पवित्रता को प्रभु दर्शन का फल भी मानता है। वैदिक सिद्धान्त को **सुस्पष्ट** करने के लिये हम यहाँ ऋषि दयानन्द जी महाराज के अमर ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश का एक प्रमाण देना उपयोगी समझते हैं–

प्रार्थना का फल

प्रश्न–परमेश्वर की स्तुति प्रार्थना और उपासना करनी चाहिए या नहीं।

उत्तर–करनी चाहिए।

प्रश्न–क्या स्तुति आदि करने से ईश्वर अपना नियम छोड़ स्तुति प्रार्थना करने वाले का पाप छुड़ा देगा?

उत्तर–नहीं

1. ऋग्वेद 9-73-3
2. यजुर्वेद 19-43

प्रश्न–तो फिर स्तुति प्रार्थना क्यों करना?

उत्तर–उनके करने का फल अन्य ही है।

प्रश्न–क्या है?

उत्तर–स्तुति से ईश्वर में प्रीति, उसके गुण, कर्म स्वभाव से अपने गुण, कर्म, स्वभाव का सुधारना, प्रार्थना से निरभिमानता, उत्साह और सहाय का मिलना, उपासना से परब्रह्म से मेल और उसका साक्षात्कार होना।

ऋषि जी ने फिर लिखा है–

"प्रश्न–ईश्वर अपने भक्तों के पाप क्षमा करता है वा नहीं?

उत्तर–नहीं, क्योंकि जो पाप क्षमा करे तो उसका न्याय नष्ट हो जाता है और सब मनुष्य महापापी हो जायें।"

प्रभु की कल्याणी पावमानी वेद वाणी व महर्षि के वचनों के प्रमाण देकर हमने स्पष्ट किया है कि वैदिक धर्म पाप की प्रवृत्ति एवं पाप मार्ग से बचकर पुण्य कर्म की प्रेरणा देता है। वेद सर्वथा यह आश्वासन नहीं देता कि पूजा, प्रार्थना, उपासना से तुम्हारे पाप कर्म का दण्ड तुम्हें नहीं मिलेगा। संसार में अन्याय व भ्रष्टाचार क्या है? यही ना! कि एक व्यक्ति दनुजता का रूप धारकर संसार में उपद्रव करे अथवा उद्दण्डता का मूर्त्तरूप बन जाए और उसे उसके किए का दण्ड न मिले। दूसरों के अधिकारों का अनादर कर अनाधिकार चेष्टा अथवा अयोग्य व अदक्ष व्यक्तियों की मनमानी ही तो भ्रष्टाचार है।

वेद ने जहाँ कर्मफल सिद्धान्त को मान्यता दी है वहीं इस सिद्धान्त की विरोधी मान्यताओं 'भगवान् भक्तों के बस में है, भगवान् भक्तों के कुकर्मों को क्षमा कर देता है आदि को झुठलाया है। महर्षि ने उपासना का फल गुण, कर्म एवं स्वभाव का सुधार, निरभिमानता, उत्साह व सहाय का मिलना बताकर मानव जाति को आत्मोन्नति व चरित्र निर्माण का कल्याण मार्ग दर्शाया है। यही विश्व शान्ति का मूल मन्त्र है। वेद कहता है **'विश्वस्य मिषतो वशी'**[1] सम्पूर्ण विश्व उस प्रभु के वश में है।

1. ऋग्वेद 10–190–2

फ़ारसी के एक कवि ने लिखा है–

'बर मन मनिगर बर कर्मे ख़्वेश निगर।'

अर्थात् मेरे कुकर्मों की ओर मत देख तू अपनी दया-दृष्टि की ओर देख।

एक मुस्लिम कवि ने लिखा है–

कह देंगे साफ़ दावरे महशर के रूबरू।
हाँ हाँ गुनाह किए तेरी रहमत के ज़ोर पर॥

अर्थात् हम प्रलय के दिन अल्लाह से स्पष्ट कर देंगे कि हमने तेरी दया व क्षमा के बल पर जी भर कर पाप किये। सदाचार की कैसी सुन्दर शिक्षा है?

विख्यात विचारक, लेखक व कवि श्री अनवर शेख जी ने इसी विचारधारा पर व्यंग्य कसते हुए लिखा है–

"लाज़िम है झूठ बोलना"

मुर्शद ने यह कहा–

बख़्शेगा वरना क्या ख़ुदा? गुस्सा न कीजिये।[1]

इस मलीन हीन मनोवृत्ति ने अगणित मानवों को पतनोन्मुख किया है। इसी भावना ने अनेकों के मन में आत्मोन्नति की भव्य भावनाओं को उभरने ही नहीं दिया। जीवन सुधार का विचार पैदा ही क्यों हो? इस विचार ने सदाचार के भवन की दीवारों में दरारें पैदा कर दीं। ईश्वर की दया-दृष्टि व क्षमा के भरोसे मनुष्यों ने अपना आत्म निरीक्षण ही छोड़ दिया। मनुष्यों का चरित्र भी गया और मानवों ने आत्म गौरव भी खोया। मनुष्य का लोक एवं परलोक दोनों बिगड़ गये।

ऋषि दयानन्द का महान् उपकार है कि उसने इस भ्रान्ति को दूर किया कि ईश्वर दयालु है इसलिए पाप क्षमा कर देगा। महर्षि ने लिखा है ईश्वर दयालु है और न्यायकारी भी। ऋषि ने लिखा है दया और न्याय परस्पर विरोधी गुण नहीं। दोनों का प्रयोजन एक ही है। जितना किसी ने बुरा कर्म किया हो उसको उतना ही दण्ड देना चाहिए। यह न्याय है। अपराधी को दण्ड न दिया जाए तो दया

1. देखिये 'बहारे दिल' पृष्ठ 367

का नाश हो जाए। **दण्ड देकर अपराधी को पाप से बचाना दया है। दूसरों को उसके अत्याचार से बचाना दया है।** इस प्रकार न्याय और दया में नाम मात्र का भेद है। ईश्वर दयालु है, यह दुहाई मचाकर कोई किये हुए कर्म के फल से नहीं बच सकता। ईश्वर न्यायकारी भी है।

जीव की स्वतन्त्रता

जीव कर्म करने में स्वतन्त्र है। यह वैदिक धर्म की एक मान्यता है। अवैदिक मत जीव को कर्म करने में स्वतन्त्र नहीं मानते परन्तु व्यवहार में विवशता के वशीभूत वैदिक सिद्धान्त का आश्रय लेने पर बाधित होते हैं। संसार की सब भाषाओं में और सब देशों में अच्छा व बुरा ये दो शब्द प्रयुक्त होते हैं। सब मतवादी इन शब्दों का प्रयोग करते हैं। प्रश्न यह है कि जब जीव कर्म करने में ही स्वतन्त्र नहीं तो अच्छे व बुरे का प्रश्न कैसे पैदा हो गया? यदि जीव कर्म करने में स्वतन्त्र नहीं तो फिर किसी भी मत का बड़े से बड़ा व्यक्ति (संस्थापक भी) अच्छा नहीं कहा जा सकता। यदि वे (नबी, संस्थापक, सन्त लोग) अच्छे थे तो इस में उनका बड़प्पन क्या? यदि मेरा बनाया मकान सुन्दर है तो श्रेय ईंटों को नहीं जा सकता। ईंट की सुन्दरता उसका कारण नहीं अपितु ईंट बनाने वाले के कारण है। भवन सुन्दर है तो निर्माता के कारण।

वैदिक धर्म जीव की कर्म करने की स्वतन्त्रता को स्वीकार करके विश्व के मानवों को दायित्व-पूर्ण जीवन बिताने की प्रेरणा देता है। वैदिक नागरिक अपने कर्म के लिये अपना दायित्व स्वीकार करता है। कर्म करके उसके दायित्व से वैदिक धर्मी भागता नहीं। कर्म स्वयं करना व दायित्व भगवान् या शैतान पर डालना यह कायरता पूर्ण अथवा अनैतिक नीति वैदिक धर्मी आर्यों को सर्वथा अमान्य है। Responsibility and Freedom (दायित्व व स्वतन्त्रता) यह वैदिक दर्शन की नैतिक मान्यताओं की जान है। सारे विश्व का आचार शास्त्र और सारे देशों का दण्ड विधान इसी सार्वभौमिक

वैदिक दृष्टिकोण पर टिका हुआ है। न्यायालयों में न्यायाधीश क्या कहते हैं? यही ना! कि अमुक को यह दण्ड दिया जाय क्योंकि उसने अपराध किया है और अमुक को छोड़ दिया जाय क्योंकि वह निरपराधी है। उसने आपत्तिजनक कार्य नहीं किया। जीव की स्वतन्त्रता में अवैदिक मतों के मानने वाले विश्वास करें या न परन्तु अपने-अपने राष्ट्र में शान्ति व्यवस्था रखने के लिए न्यायालयों में मनुष्यों को उनके किए हुए कर्म के लिए उत्तरदायी मान कर दण्ड दिया जाता है। **डॉ० गुलाम जैलानी मनुष्य की कर्म करने की स्वतन्त्रता का खुलकर पक्ष लेते हैं।**[1] एक मुस्लिम कवि ने इस वैदिक मान्यता के मर्म को समझकर मुसलमान तत्व ज्ञानियों से इस्लाम पर चुभता व्यंग कसकर एक प्रश्न पूछा है:-

ख़ूब हंसी आती है मुझे हज़रते इनसान पर।
फ़ेले बद तो ख़ुद करे लानत करे शैतान पर।।[2]

अर्थात् कुकर्म स्वयं करके शैतान के सिर सारा दायित्व थोप देना यह कहाँ की नैतिकता है?

इस्लाम व ईसाई मत में तो जीव की स्वतन्त्र सत्ता के न होने के कारण जीव की कर्म करने की स्वतन्त्रता को मान्यता न मिल सकी परन्तु हिन्दुओं में भी वेद विमुख होने से यही भ्रमपूर्ण विचार फैल गया है कि जो करता है परमेश्वर ही करता है। मेरा ऐसा विचार है कि हिन्दुओं की इस पौराणिक मान्यता का कारण पुजारियों के उपवास (जिन्हें वे व्रत कहते हैं) तीर्थ यात्रा व प्रायश्चित्त सम्बन्धी कर्मकाण्ड का विधान तो है ही। इसका दूसरा कारण नवीन वेदान्त भी है। उपवास यात्रा व प्रायश्चित्त की पौराणिक मान्यताएँ यह सिद्ध करती हैं कि ईश्वर चाहे तो कुकर्मी को पुरस्कृत कर दे, नर्क वाले को स्वर्ग में और स्वर्ग वाले को नर्क में भेज दे। इस प्रकार जीव की कर्म करने की स्वतन्त्रता एक ढोंग मात्र रह जाती है। जब उपवास मात्र से स्वर्ग मिल सकता है,

1. देखिये दो इस्लाम पृष्ठ 268
2. कई शताब्दियों से हाजी शैतान पर पत्थर मारते आ रहे हैं परन्तु, उसका कुछ भी नहीं बिगड़ा। मनुष्य अवश्य बिगड़ रहे हैं।

पत्नी के उपवास से पति की आयु बढ़ सकती है, नदी नालों में स्नान से पाप कट सकते हैं और मनोकामनायें पूर्ण हो जाती हैं तो जीव के कर्मों व कर्म करने की स्वतन्त्रता का कोई महत्त्व नहीं रहता।

नवीन वेदान्त में जीव की सत्ता को ही स्वीकार नहीं किया गया अतः जीव की कर्म की स्वतन्त्रता का प्रश्न ही नहीं उठता। पौराणिक कीर्तनकार की ताली की ताल है–

जो बिगड़े सो तेरा नाथ मेरा क्या बिगड़े।

इन्हीं भावनाओं के वशीभूत गोस्वामी तुलसी दास जी ने भी लिखा–

कोऊ हो नृप हमें का हानि।
चेरी छोड़ न भई मैं रानी।।

श्री स्वामी विवेकानन्द ने पुरुषार्थ व परमार्थ का सन्देश देश वासियों को दिया परन्तु उनके जीवन की निम्न घटना से पता चलता है कि वह भी पौराणिक संस्कारों के कुप्रभाव से पूर्ण रूपेण न बच सके। विवेकानन्द चरित पुस्तक के लेखक श्रीयुत सत्येन्द्र मजूमदार ने अपनी उक्त पुस्तक (हिन्दी अनुवाद चतुर्थ संस्करण) के पृ० 419 पर लिखा है "30 दिसम्बर को स्वामी जी सहसा क्षीर भवानी की ओर चल पड़े और उन्होंने यह आदेश दिया कि कोई शिष्य उनका पीछा न करे।"

फिर लिखा है "होमाग्नि के सम्मुख योगासन पर बैठे हुए विवेकानन्द महामाया के ध्यान में मग्न होने वाले थे। उसी समय सामने के टूटे हुए मन्दिर को देखकर उनके मन में विचार हुआ कि जिस समय मुसलमानों ने उस मन्दिर को तोड़ा था उस समय हिन्दू लोग क्या अपने बाहुबल द्वारा उन्हें नहीं रोक सकते थे? यदि मैं उस समय उपस्थित होता तो प्राणों की बाज़ी लगाकर के माता के मन्दिर की रक्षा करता, किसी भी तरह पवित्र मन्दिर का नाश न होने देता।"

"पर सहसा उन्होंने देव वाणी सुनी अपने कान से सुना कि जगजननी सस्नेह भर्त्सना के साथ कह रही है **यदि मुसलमानों**

ने मेरा मन्दिर विध्वस्त कर प्रतिमा को अपवित्र कर भी दिया है तो इससे तेरा क्या? तू मेरी रक्षा करता है या मैं तेरी रक्षा करती हूँ?"

फिर लिखा है कि अगले दिन स्वामी जी ने संकल्प किया कि मैं भीख माँग कर भी उस मन्दिर के संस्कार का संकल्प पूरा करूँगा परन्तु फिर देव वाणी हुई–"जननी ने कहा यदि मेरी इच्छा हो तो क्या मैं सात मंजिल वाला सोने का मन्दिर इसी मुहूर्त में तैयार नहीं कर सकती हूँ? मेरी इच्छा से ही यह मन्दिर भग्न हो कर पड़ा हुआ है।" लेखक ने इस पर लिखा है कि इस घटना से "कर्मयोगी का विद्या का अहंकार चूर्ण हुआ।" कुछ भी हो इस प्रकार के विचारों से राष्ट्र का पतन होता है। बुराई बढ़ती है घटती नहीं। जब जगज्जननी ही अपना अपमान स्वयं करवाती है तो फिर अन्यायी व पापी किस को कहें?

सिख सम्प्रदाय में गुरुओं की वाणी में अनेक स्थानों पर जीव की कर्म करने की स्वतन्त्रता के वैदिक सिद्धान्त को स्वीकार किया गया है। यथा–

आपे बीजि आपे ही खाहि। –जपुजी।

जैसा करे सु तैसा पावे, आप बीज आपे ही खावे।

–महला 1 शब्द 6।।

जैसा बीजै तैसा खावै। –महला 4 शब्द 54।।

इस प्रकार के स्पष्ट प्रमाणों के होते हुए भी सिख सम्प्रदाय वाले भी नवीन वेदान्त के प्रभाव में यही राग अलापते हैं:–

'मानुष के कुछ नहीं हाथ
करे कराए आपे आप।'

ये विचार किसी भी देश की प्रगति में साधक नहीं हो सकते। बाधक अवश्य हैं। हमारे विचार में यदि इन दो पंक्तियों का यह अर्थ लिया जाय कि जन्म मरण व कर्मों का यथा योग्य भोग परमेश्वर की व्यवस्था है। वही यह कार्य करता है। यह कार्य मनुष्य के हाथ में नहीं, तो तर्क संगत है। ऋषि दयानन्द जी महाराज ने बड़े मार्मिक शब्दों में लिखा है–

"जो परमेश्वर की पुरुषार्थ करने की आज्ञा है, उसको जो कोई तोड़ेगा, वह सुख कभी नहीं पावेगा।"[1]

वेदादेश

भगवान् के वेद ज्ञान की घोषणा है–

'कृतं स्मर' अर्थात्–हे मनुष्य! अपने किये हुए कर्म को स्मरण कर। फिर कहा है:–

'जम्भयाता अनप्नस:।'[2]

कर्महीन नष्ट हो जाते हैं।

वेद ने कर्म की महिमा का गान करते हुए कहा है–

'अकर्मा दस्यु:।'[3]

अर्थात्–कर्म न करने वाला ही दस्यु है।

वेद कहता है–

'सुकर्माण: सुरुचो।'[4]

अच्छे कर्म करने वाले यशस्वी होते हैं। इससे स्पष्ट है कि वेद जीव को कर्म करने में स्वतन्त्र मानता है। वैदिक दर्शन के अनुसार उन्नति की सब राहें जीव के लिए खुली हैं। वेद ने उद्बोधक शब्दों में कहा है–

'इतो जयेतो वि जय सं जय जय स्वाहा'।[5]

हे जीव! **तेरी यहाँ जय हो वहाँ जय हो, जय ही जय** प्राप्त कर। कुछ लोग वेद के कर्म फल सिद्धान्त व पौराणिकों के भाग्यवाद, विधाता के विधान व ईश्वराज्ञा को एक ही बात समझते हैं। यह उनकी भूल है। वेद के प्रकाण्ड विद्वान् श्री स्वामी समर्पणानन्द जी ने अपने ग्रन्थ **काया-कल्प** में लिखा है।

1. सत्यार्थप्रकाश समुल्लास सातवाँ।
2. ऋग्वेद० 2-23-9
3. ऋग्वेद 10-22-8
4. अथर्व० 18-3-22
5. अथर्व० 8-8-24

भाग्यवाद कर्मफल सिद्धान्त का शत्रु है।

"ईश्वर के सबसे बड़े शत्रु उसके यह भाग्यवादी भक्त हैं। वे भूल जाते हैं कि भगवान् ने हमें विशेष अवस्थाओं में जन्म दिया है। उसी ने हमें उन्हें अपने अनुकूल करने की शक्ति और आदेश भी तो दिया है। हाथ, पैर, आँख, नाक, कान और सब से बढ़कर सिर यह सब मूल्यवान् सम्पत्ति भगवान् ने भाग्य के साथ लड़कर उसे जीतने के ही लिए दी है। भगवान् ने कहा है–

दूष्या दूषिरसि हेत्या हेतिरसि मेन्या मेनिरसि। आप्नुहि श्रेयांसमति। समम् क्राम।[1]

अर्थात्–तू शस्त्रों को काटने वाला शस्त्र है। तू दूषणों को दूषित कर देने वाली महाशक्ति है। तू चिन्ताओं का पहले से चिन्तन करने वाला अनागस विधाता है। उठ! जो तेरे साथ की पंक्ति में हैं उनमें जा मिल।

एक आर्य महामुनि पाणिनिजी ने प्राचीन काल में अपने ग्रन्थ अष्टाध्यायी में एक सूत्र लिख कर वैदिक दर्शन के एक गूढ़ रहस्य का मानव मात्र के हित के लिए प्रकाश किया है। वह सूत्र है–

'स्वतन्त्रः कर्त्ता।' कर्त्ता वह है जो स्वतन्त्र है। जो स्वतन्त्र नहीं वह कर्त्ता नहीं।

जैसा कि हमने पहले भी लिखा है कि आज भले ही कोई जीव की कर्म करने की स्वतन्त्रता के वैदिक सिद्धान्त को माने या न माने परन्तु व्यवहार में सारे मानव समाज ने वैदिक धर्म का यह सिद्धान्त स्वीकार कर लिया है। मैंने यह कार्य किया है। ये वाक्य प्रतिदिन हम प्रयुक्त करते हैं। न्यायालयों में निर्णय देते हुए न्यायाधीश लोग पाणिनि मुनि के सूत्र **'स्वतन्त्र कर्त्ता'** की सत्यता की पुष्टि करते हैं। सारे संसार में न्यायाधीश अपराधी को दण्डित करने से पूर्व यह देखते हैं कि कुकर्म, दुष्कर्म अथवा अपराध कर्त्ता यही है और कर्त्ता भी स्वतन्त्र। निर्दोषों पर गोली चलाने वाला सिपाही तो कभी दोषी नहीं माना गया। गोली मारने

1. अथर्व० 2-11-1

का आदेश देने वाला ही दोषी ठहराया जाता है। कारण सिपाही स्वतन्त्र कर्त्ता नहीं होता।

कुछ लोगों की यह आपत्ति है कि जब हमारा वर्तमान जन्म हमारे पूर्व कर्मों का फल है तो जीव की कर्म करने की स्वतन्त्रता कहाँ रही? फिर तो हम परिस्थितियों के दास हैं। हमारे अधिकार व हमारे स्थान इस संसार में जब पूर्व निश्चित हैं तो हम कर ही क्या सकते हैं? श्री डाक्टर गोकुल चन्द नारंग ने इसका उत्तर देते हुए लिखा है–

"Rain comes down from the clouds and we cannot stop it but we can escape being drenched if we carry a good umbrella or take cover. An arrow once shot cannot be recalled but one can avoid being hit by taking cover or opposing a good shield against it. In the same way, the effect of our past Karma is inevitable, but the virtuous energy dispalyed in this life can, if enough, successfully ward it off or mitigate it. Opportunity, in fact, series of opportunities are available to us..."[1]

इस का सार यह है कि हम वर्षा तो नहीं रोक सकते परन्तु छाता लेकर भीगने से तो बच सकते हैं। तीर नहीं रोक सकते परन्तु ढाल आगे करके बचाव कर सकते हैं।

परिस्थिति व अन्तः स्थिति

श्री स्वामी समर्पणानन्द जी के इसी विषय में कुछ विचार हम पीछे उद्धृत कर आए हैं। उन्होंने इसी विषय पर कायाकल्प में एक और प्रकरण लिखा है–

"संसार भर के दुराचारी परिस्थिति की आड़ में घोर से घोर अत्याचार करके परिस्थिति की दुहाई दे छोड़ते हैं। जो स्थान कभी कर्मफल, प्रारब्ध, भाग्य तथा कलियुग ने लिया था वह आज परिस्थिति ने लिया है। यह परिस्थिति क्या है? बीसवीं शताब्दी के कर्महीन आलसियों का महा कवच है।"

इसी पुस्तक में स्वामी जी ने लिखा है–

1. Glorious Hinduism

"जहाँ अन्तः स्थिति बलवान् होती है वहाँ सुख और शान्ति निवास करते हैं जहाँ परिस्थिति बलवान् होती है, वहाँ अनीति, अत्याचार और दुःख निवास करते हैं, इसलिए हमारा मुख्य ध्येय अन्तः स्थिति का सुधार होना चाहिए।"

वैदिक आशावाद

श्री पं० गंगाप्रसाद जी उपाध्याय ने लिखा है–

"Thus Vedic Philosophy is always optimistic. It helps us in always hoping for the better. No eternal hell. No eternal heaven. No eternal doom. The door of bliss is always open."[1]

अर्थात् वैदिक दर्शन सदैव आशावादी है। यह सदा हमें कल्याण अथवा भलाई की आशा बंधाता है। न सदा के लिए नरक और न सदा के लिए स्वर्ग। आनन्द का द्वार, कल्याण का द्वार सदा खुला है। यहाँ यह स्मरण रहे कि वैदिक धर्म मुक्ति से लौटने का सिद्धान्त मानता है। ऋषि दयानन्द का तर्क सरल व स्पष्ट है कि जिसका आदि है उसका अन्त है। जो बना है सो टूटेगा। जो टूटा है सो बना था। सीमित कर्म के लिए असीम फल नहीं हो सकता। अतः जीव मोक्ष का आनन्द भोग कर अवश्य लौटता है।

इसी तथ्य पर प्रकाश डालते हुए एक विद्वान् ने लिखा है–

"The law of karma thus does not do away with free will but constitutes the charter of freedom."

अर्थात् कर्मफल सिद्धान्त कर्त्ता की स्वतन्त्रता को अमान्य नहीं मानता प्रत्युत यह तो स्वतन्त्रता के अधिकार का एक चार्टर-घोषणा पत्र है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि कर्मफल सिद्धान्त जीव की स्वतन्त्र इच्छा की अवहेलना नहीं करता अपितु स्वतन्त्रता का अधिकार पत्र है।

डॉ० राधाकृष्णन् ने भी वैदिक आशावाद को बहुत सुन्दर शब्दों में बताया है–

1. Vedic Philosophy Page 14

"Every saint has a past and every sinner has a future."

अर्थात् प्रत्येक संत का एक अतीत है और प्रत्येक पापी का एक भविष्य है।

दर्शन में जीव की कर्म करने की स्वतन्त्रता
कर्तुं अकर्तुं अन्यथा कर्त्तुम्।

जीव चाहे तो करे चाहे तो न करे और चाहे तो विपरीत कर्म करे। आचार शास्त्र (Ethics) का सम्बन्ध जीव के कर्मों से है **यदि जीव कर्म करने में स्वतन्त्र नहीं तो आचार शास्त्र के लिए विश्व में कोई स्थान नहीं।**

श्री डार्विन साहेब ने विकासवाद में प्राकृतिक निर्वाचन का सिद्धान्त रखा है। श्री पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय ने लिखा है:–

Natural selection is a dignified name of struggle for existence or survival. The struggle lies in selection, rejecting the unfavourable and letting live the favourable.[1]

अर्थात् प्राकृतिक निर्वाचन सत्ता या जीवन के संघर्ष के लिये एक बहुत चमकीला नाम है। संघर्ष चुनने में और प्रतिकूल के परित्याग और अनुकूल को बनाये रखने में है।

निर्वाचन व स्वतन्त्रता

फिर लिखा है–"All selection implies struggle, an effort to choose out of two or more things."[2]

अर्थात् सब प्रकार के निर्वाचन में एक संघर्ष होता है। निर्वाचन दो या दो से अधिक वस्तुओं में से एक को चुनने के यत्न का नाम है। इससे सिद्ध हुआ कि हम मानव जीवन का अवलोकन जिस दृष्टि से भी करें जीव की कर्म करने की स्वतन्त्रता का सिद्धान्त हमें मानना ही पड़ता है।

1. Philosophy of Dayananda, Para 586
2. Philosophy of Dayananda, Para 586

दया और न्याय

इस के बारे में पहले भी कुछ लिखा जा चुका है। ईश्वर दयालु है वा न्यायकारी? मत, पंथों में इस विषय में भी भ्रान्ति है। इस सरल सी बात को उलझन बना दिया गया है।

स्वामी सत्यप्रकाश जी लिखते हैं–

"The mercy of God lies in his being just. His justice is the greatest mercy. He is kind to us. Because He is just and merciful both."[1]

अर्थात् भगवान् की दया उसके न्याय में निहित है। उसका न्याय ही सबसे बड़ी दया है। वह हम पर दया करता है क्योंकि वह प्रभु एक साथ न्यायकारी व दयालु है।

नैतिक व अनैतिक में भेद

श्री पं० गंगाप्रसाद जी उपाध्याय ने बड़े मार्मिक ढंग से लिखा है–

"Everything has been predestined. If it is so, then there is no distinction between life and no-life, between a moral being and an immoral being, between a virtuous man and a sinner."[2]

सब कुछ पूर्व निश्चित या निर्धारित है तो फिर······भाव यह है कि यदि जीव कर्म करने में स्वतन्त्र नहीं तो फिर जड़ व चेतन में भेद क्या रहा? फिर एक नैतिक व अनैतिक जीवन में क्या भेद है? फिर एक सत्कर्मी धर्मात्मा व कुकर्मी दुष्ट में क्या भेद हुआ?

आज सारा मानव समाज शोषण के विरुद्ध चिल्ला रहा है। प्राय: सब देशों ने अपने-अपने विधान में अपने नागरिकों को शोषण से बचाने का आश्वासन दिया है।

यही कर्मफल सिद्धान्त का प्रयोजन है। कर्म करने की स्वतन्त्रता ही नैतिकता व स्वाधीनता के सिद्धान्त का मूल मन्त्र है। एक विचारक ने लिखा है–

---

1. A Critical Study of Philosophy of Dayananda Page 197-198
2. Philosophy of Dayananda Para 671

"Just as we deem it a charter of freedom that one cannot in Law be robbed of the fruit of One's labour, the Law of Karma is the Magna Carta of free will"

जैसे हम यह अधिकार पत्र समझते हैं कि राज्य अधिनियम के अनुसार किसी भी व्यक्ति को उसके श्रम के फल से वंचित नहीं किया जा सकता ऐसे ही कर्मफल सिद्धान्त जीव की कर्म करने की स्वतन्त्रता का यशस्वी अधिकार पत्र है।

स्वतन्त्रता व नैतिकता का अटूट सम्बन्ध है। स्वामी सत्यप्रकाश जी ने लिखा है–

"Freedom imposes responsibility."[1]

अर्थात् स्वतन्त्रता उत्तरदायित्व लाती है। दोनों जुड़वाँ हैं।

सृष्टि है क्या? :
सृष्टि नाम है प्रकृति और कर्म दोनों के मेल का।

1. Light Within Page 49

नवाँ अध्याय
कर्मफल की व्यवस्था

"The universe with its beauties and laws and harmonies, is nothing to an idiot mind caged in matter," -मुनिवर गुरुदत्त जी विद्यार्थी
अर्थात् जगत् का सौन्दर्य, नियमबद्धता तथा परस्पर का तालमेल प्रकृति के बन्दीपन में फँसे जड़ बुद्धि के लिये कुछ भी महत्त्व नहीं रखते।

जीव कर्म करने में स्वतन्त्र है हमारे इसी वैदिक सिद्धान्त का पूरक यह सिद्धान्त है कि जीव फल के भोगने में परतन्त्र है। गीता का निचोड़ ही यह है कि कर्म करना हमारा अधिकार है फल ईश्वर के आधीन है। ऋषि दयानन्द जी महाराज ने सत्यार्थ प्रकाश में इस विषय पर प्रकाश डालते हुए एक प्रश्न उठाया है।

प्रश्न–जीव स्वतन्त्र है, वा परतन्त्र?

उत्तर–अपने कर्त्तव्य कर्मों में स्वतन्त्र और ईश्वर की व्यवस्था में परतन्त्र है।

सत्यार्थ प्रकाश के अन्त में स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश में भी देव दयानन्द ने लिखा है–

"जीव अपने कर्मों में स्वतन्त्र और कर्मफल भोगने में ईश्वर की व्यवस्था से परतन्त्र, वैसे ही ईश्वर अपने सत्याचार आदि करने में स्वतन्त्र है।"

सत्यार्थप्रकाश के सप्तम समुल्लास में लिखा है–

"अपने सामर्थ्यानुकूल कर्म करने में जीव स्वतन्त्र परन्तु जब वह पाप कर चुकता है तब ईश्वर की व्यवस्था में पराधीन होकर पाप के फल भोगता है।"

यद्यपि अन्य मतों ने कर्मफल सिद्धान्त को मान्यता नहीं दी तथापि कुरान आदि पुस्तकों में कहीं-कहीं कर्मफल के अटल नियम का उल्लेख है। इन मतों ने कर्मफल को एक व्यवस्था या नियम नहीं माना। मानें भी कैसे? यदि सृष्टि में व्यवस्था मतवादियों को दीख जाए तो चमत्कार कहाँ जाएँगे? **यदि चमत्कार न रहें तो अवैदिक मत कैसे रह सकेंगे?**

कुरान में कहीं-कहीं कर्मों के लिये दुगने, तिगुने फल व दण्ड की चर्चा है। इससे स्पष्ट है कि कर्मफल किसी व्यवस्था के रूप में मतवादियों को मान्य नहीं। ईश्वर की इच्छा पर सब कुछ निर्भर है।

वेद का घोष है–

'सविता सत्य धर्मा'[1]

अर्थात्–परमेश्वर का सृष्टि नियम सत्य है।

वेद ने कहा है–

'सत्यं बृहदृतं उग्रम्'[2]

अर्थात् सत्य व व्यवस्था ये आचार शास्त्र व सामाजिक संगठन के प्रथम दो स्तम्भ हैं। वेद पुकार-पुकार कर कहता है–

मधु वाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः माध्वीर्नः स्वन्त्वोषधीः॥[3]

भाव यह है कि संसार में वायु, नदियाँ व औषधियाँ उसी के लिए सुखदायी हैं जो ईश्वर की व्यवस्था (ऋत) के अनुसार चलते हैं।

वैदिक धर्म का प्रभु की रचना के अटल नियमों में कैसा अटल विश्वास है इसका एक सुन्दर प्रमाण ऋग्वेद का निम्न मन्त्र है–

ओ३म् सूर्यचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्।
दिवं च पृथ्वीं चान्तरिक्षमथो स्वः॥[4]

1. अथर्व॰ ॥
2. अथर्व॰ 12-1-1
3. ऋग्वेद 1-90-6
4. ऋग्वेद 10-190-3

अर्थात् जैसे पहले कल्प में सूर्य, द्यौलोक, पृथ्वी और अन्तरिक्ष तथा लोक-लोकान्तर रचे गये वैसे इस कल्प में बनाए गये। वैदिक धर्म सृष्टि को प्रवाह से अनादि मानता है। सृष्टि से पूर्व प्रलय और प्रलय के पश्चात् सृष्टि, यह क्रम अनादि काल से चला आ रहा है। परमात्मा की इस सृष्टि के नियम भी वही हैं जो पहले कल्पों में थे। ईश्वर अपनी व्यवस्था को भंग नहीं करता है।

श्री डॉ० सत्यप्रकाश ने लिखा है-

"Perhaps lawlessness would have gone more against the theistic conception than the existence of law."[1]

सम्भवतः व्यवस्था की अपेक्षा अव्यवस्था आस्तिकवाद के विचार का अधिक विरोध करती है।

वैदिक धर्म व्यवस्था को ही जीवन का सौन्दर्य मानता है। मतवदी इसके विपरीत चमत्कारों को किसी व्यक्ति की आत्मिक शक्ति का प्रमाण मानते हैं। पं० चमूपति जी ने लिखा है।

"मूर्खों में धर्म का आधार चमत्कार होता है। ऐसा होना स्वाभाविक है। धर्म इन्द्रिय ग्राह्य जगत् से ऊपर की ओर संकेत करता है। धर्म के मुख्य विषय आत्मा और परमात्मा हैं।"

ईश्वर की अटल व्यवस्था की ओर संसार का ध्यान आकृष्ट करके ऋषि ने मानव समाज का भारी उपकार किया है। यह उनकी महान देन है। कर्मफल सिद्धान्त के मर्म को समझते हुए ऋषि के लिये शब्द 'ईश्वर की व्यवस्था के आधीन' अत्यन्त सारगर्भित हैं।

जैन आदि मत व कुछ इतर लोग सृष्टि नियम में तो विश्वास रखते हैं परन्तु कर्मफल दाता अथवा नियन्ता को नहीं मानते। कुछ ऐसे ही लोगों ने प्रसिद्ध वैज्ञानिक श्री आईनस्टाईन से कहा था कि संसार का नियन्ता नहीं यह विश्व अपने कार्यक्रम (Routine) से यूँ ही चल रहा है। महान् वैज्ञानिक ने उत्तर में कहा-

"The nonsense is not merely nonsense. It is objectionable nonsense."

अर्थात् यह अनर्थक बात न केवल निरर्थक है अपितु

1. A Critical Study of Dayananda Page 208

आपत्तिजनक निरर्थकता है। हमारे पाठक कल्याणी वाणी वेद के निम्न शब्दों पर विचार करें और महान् Einstein के उपरोक्त वाक्य का इससे मिलान करें–

'ऋतं च सत्यं चाभिद्धात् तपसोऽध्यजायत।'[1]

अर्थात् ऋत (व्यवस्था) व सत्य का आविर्भाव उसी सर्वज्ञ व क्रियाशील परमेश्वर से हुआ। सम्भवतः संसार के किसी भी ग्रन्थ में व्यवस्था (ऋत) की (Law and order) की इतनी चर्चा व इतना महत्त्व नहीं दर्शाया गया जितना कि मानव धर्म वेद में है।

ऋषि दयानन्द जी महाराज का महान् उपकार है कि उन्होंने अपना सर्वस्व होम कर वेद के भेद खोले। ऋषि के महान् उपकारों में एक यह भी है कि उन्होंने **'ईश्वर की व्यवस्था के अधीन'** इस दार्शनिक सूत्र को देकर महान सत्य का प्रकाश किया। इसी सत्य को महान् Einstein (आईनस्टाईन) ने अपने उपरोक्त वाक्य में व्यक्त किया है।

ईश्वर के अटल नियम में विश्वास ही मनुष्य को आशावादी, उत्तरदायी, साहसी व प्रगतिशील बना सकता है। जब सृष्टि नियम की स्थिरता में ही हमारा विश्वास नहीं तो वैज्ञानिक अनुसंधान क्या करेंगे? बड़े सौभाग्य की बात है कि **किसी भी मत को मानने वाला कोई भी व्यक्ति गम्भीरता से सृष्टि नियम में फेरबदल या अनियमितता नहीं मानता।** यदि सृष्टि नियम ही टूटने लगे तो हमारे किये हुए कर्मों का पूरा फल अनिश्चित हो जाये। व्यक्ति हताश, निराश व उदास होकर बैठ जाए। अकर्मण्यता का राज्य हो जाने से दुःख व दरिद्रता का अखण्ड शासन सारे विश्व में हो जाए। श्री पं० गंगाप्रसाद जी उपाध्याय ने लिखा है–

"Everything depends upon chance. Whatever happened in the past was due to chance. Whatever is happening in the present is by chance. And whatever will happen in future will depend on chance. Such mentality offers no incentive to man. It makes a man lazy, irresponsible and reckless."[2]

1. ऋग्वेद 10-19-1।।
2. The world as We View It, Page 14

अर्थात् जो कुछ हो रहा है और जो कुछ होगा सब अक्स्मात् है। ऐसा विचार कर्म में प्रवृत्त करने की मानव को प्रेरणा नहीं दे सकता। इससे मनुष्य प्रमादी अनुत्तरदायी व धृष्ट बनता है। वैदिक धर्म का मतों से यह एक मौलिक भेद है।

विचारशील मानवों को हम पूज्य स्वामी श्री सत्यप्रकाश जी के ये शब्द हृदयंगम करवाना चाहते हैं–

"Order would certainly appear to be nature's first law."[1]

अर्थात् व्यवस्था निश्चय ही ईश्वर का प्रथम नियम है।

श्री पं० चमूपति जी ने इस विचार की विवेचना करते हुए लिखा है–

"यदि जीवन केवल मात्र आकस्मिक घटनाओं की शृंखला है तो कोई सुकर्म क्यों करे? पुरुषार्थ क्यों करे? मिलता तो वही है जो परमात्मा कहता है। और (अथवा या) प्रकृति ला देती है। इस धारण में न वीरता है न बुद्धिमत्ता।"[2]

जीव पाप क्यों करता है?

प्राय: प्रश्न किया जाता है कि जीव पाप क्यों करता है? यदि हम पाप करते हैं तो ईश्वर हमें रोकता, टोकता क्यों नहीं। पहले बताया जा चुका है कि वैदिक धर्म जीव को कर्म करने में स्वतन्त्र मानता है। इसलिये परमात्मा के रोकने, टोकने का प्रश्न ही नहीं उठता। परमात्मा ने जीव के मार्गदर्शन के लिए भले बुरे का ज्ञान कराने के लिये वेद का प्रकाश दिया है। हृदयों में व्यापक ईश्वर सदैव सत्कर्म की प्रेरणा देता है। यदि जीव फिर भी पाप करता है तो ईश्वर टोके क्यों? वह अपनी न्याय व्यवस्था के अनुसार फिर दण्ड देगा। यदि परीक्षा भवन में छात्र ठीक उत्तर नहीं देता तो अध्यापक टोकेगा नहीं। हाँ! परीक्षा से पूर्व वह ज्ञान अवश्य देता है। मत-मतान्तर इस प्रश्न का उत्तर नहीं दे सकते कि जीव पाप

1. A Critical Study of Philosophy of Dayananda Page 208
2. वैदिक सिद्धान्त

क्यों करता है। वे तो यह मानते हैं कि जीव को परमेश्वर ने बनाया है। यदि परमेश्वर ने बनाया है तो पाप करने वाला क्यों बनाया? ऋषि दयानन्द जी ने इस शंका का बड़ा सुन्दर उत्तर दिया है–

"मनुष्य का आत्मा सत्यासत्य का जानने वाला है। तथापि अपने **प्रयोजन की सिद्धि, हठ, दुराग्रह, और अविद्यादि दोषों से सत्य को छोड़कर असत्य में झुक जाता है।"**[1]

वेद कहता है–

क्रत्वः समह दीनता प्रतीपं जगमा शुचे।
मृढा सुक्षत्र मृडय।।[2]

अर्थात् जीव अपनी दुर्बलता, दीनता अथवा अल्पज्ञता के कारण कर्त्तव्य मार्ग से भटक जाता है। आत्मिक व मानसिक निर्बलता से ही मनुष्य पतनोन्मुख होता है।

वेद का यह मन्त्र जीव पाप क्यों करता है? इस जटिल दार्शनिक समस्या का जो उत्तर देता है वह वेद ज्ञान की अपनी मौलिक देन है। धर्म के इस मर्म को समझकर ही हम अपना व विश्व का सुधार व उपकार कर सकते हैं।

एक अन्य भ्रान्ति

एक अन्य भ्रान्ति कुछ लोगों में पाई जाती है कि व्यवस्था ही विश्व की नियन्ता है। स्वामी सत्यप्रकाश जी इस पर लिखते हैं–

"We must remember that universe is not run by laws. The running of the universe implies that there is particular law and order."[3]

अर्थात् हमें यह स्मरण रखना चाहिये कि ब्रह्माण्ड का संचालन नियमों द्वारा नहीं होता प्रत्युत ब्रह्माण्ड का कार्य संचालन यह सिद्ध करता है कि यहाँ कुछ विशेष नियम व व्यवस्था है।

1. सत्यार्थप्रकाश भूमिका।
2. ऋग्वेद 7-89-3
3. A Critical Study of Philosophy of Dayananda Page 208

इस पुस्तक में ईश्वर की सत्ता की सिद्धि का विषय नहीं लिया जा सकता था परन्तु उपरोक्त प्रश्न के उत्पन्न होने पर प्रसंगवश यह लिख दें कि रचना के लिये रचियता का होना आवश्यक है। यह जगत् अपने आप तो परमाणुओं के मिलने से बना नहीं। एक सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् निर्माता व नियन्ता इस सृष्टि को बनाता व चलाता है।

सृष्टि का स्रष्टा

"यदि परमाणुओं में मिलने का **स्वभाव** है तो वह कभी अलग न होंगे मिले रहेंगे, यदि उनमें अलग-अलग रहने का स्वभाव है तो वह कभी मिलेंगे नहीं, इस प्रकार कोई वस्तु न बन सकेगी। यदि उनमें से कुछ का स्वभाव मिलने का है और कुछ का अलग रहने का, तो जिन परमाणुओं की अधिकता होगी उन्हीं के अनुकूल कार्य होगा अर्थात् यदि मिलने वाले परमाणुओं का प्राबल्य हो तो वह सृष्टि को कभी बिगड़ने न देंगे। यदि अलग-अलग रहने वाले परमाणुओं का प्राबल्य होगा तो वह सृष्टि को कभी बनने न देंगे। यदि दोनों ओर से बराबर खींचातानी होगी तो किसी पक्ष को दूसरे पर विजय प्राप्त करनी कठिन होगी।

वस्तुतः सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय अलग-अलग तथा मिलकर यही सिद्ध करती हैं कि इनका कारण एक चेतन शक्ति है।"[1]

साधनों का मूल्य :

मनुष्य को आनन्द के साधनों की बहुमूल्यता उस समय प्रतीत होती है जब उन साधनों से वंचित कर दिया जाता है।

1. आस्तिकवाद पृष्ठ 100 तृतीय संस्करण

दसवाँ अध्याय

हम और हमारा प्रभु

हम प्रभु के हैं और वह प्रभु हमारा है। यह वैदिक मान्यता है। यदि **हम (जीव) न होते तो उसे 'हमारा प्रभु' कौन कहता?** वह परमात्मा हमारी माता है, पिता है, बन्धु है, सखा है, पालक है और विधाता है। ईश्वर से ऐसे हमारे अनेक सम्बन्ध हैं। यह वेद का सिद्धान्त है। अनेक वेद मन्त्रों में इस प्रकार के भाव मिलते हैं। उस परम देव से हमारा सीधा सम्बन्ध है। वह हमारी माता है, वह हमारा मीत है तो किसी और के कारण नहीं। किसी और की कृपा या पहचान करवाने से **स्त्रष्टा** से हमारा यह सम्बन्ध नहीं बना। यह नाता सीधा है, स्वाभाविक है, सहज है और आकस्मिक नहीं अनादि काल से है।

अतः वेदानुसार प्रभु का प्यार पाने के लिये, प्रभु की भक्ति, भजन, उसकी अनुभूति व साक्षात्कार के लिये हमें किसी बीच वाले की आवश्यकता नहीं है। अपनी माँ से मिलने के लिये या पहचान बनाने व बढ़ाने के लिये मैं किसी पड़ोसी का या पड़ोसी की माँ का परिचय पत्र लेकर क्या करूँगा? इसकी आवश्यकता ही नहीं। मेरा मेरी माता से सीधा नाता है। ऐसे ही वह पिता मेरे भीतर है और मैं व आप सब उस सर्वव्यापक परमात्मा के भीतर हैं फिर उसके साक्षात्कार के लिये किसी गुरु, पीर या पैग़म्बर की आवश्यकता ही नहीं।

इस वर्ष गुरु नानक जी के प्रकाश पर्व (जन्म दिवस) पर दूरदर्शन पर सिखों की एक शोभा यात्रा दिखाई गई। इस शोभा यात्रा के आगे-आगे एक सिख देवी श्रीमति मनजीत कौर ने बड़ी श्रद्धा व गौरव से यह कहा कि गुरु नानक देव जी का यह सन्देश है

कि प्रभु मिलन के लिये किसी भी बिचौलिये की आवश्यकता नहीं है। उस देवी का यह कथन सत्य है। यह वेदोक्त मान्यता है। वैदिक धर्म का अन्य मतों से यह एक मौलिक भेद है।

अनेक लोग व मत, पंथ यह मानते हैं कि प्रभु का मिलन किसी पीर, गुरु या पैग़म्बर के बिना हो ही नहीं सकता। भारत में गुरुडम चलाने वाले लोगों को बहकाने के लिये कई मनघड़न्त मन्त्रों व दोहों को रटाते रहते हैं। यथा–

गुरु बिना गत नहीं, शाह बिना पत नहीं।।

अर्थात् बिना गुरु के बेड़ा पार नहीं हो सकता जैसे सेठ साहूकार के बिना मान सन्मान नहीं बच सकता। काम नहीं चल सकता।

वेद यह तो मानता है कि गुणी, विद्वान्, ज्ञानी, मनीषी, लोगों को मार्ग दिखावें, उपदेश दें, दुरित छुड़ावें परन्तु सन्मार्ग पर चलना तो व्यक्ति को स्वयं ही होगा। श्री महात्मा बुद्ध ने जीवन–लीला की समाप्ति से पूर्व एक मार्मिक उपदेश दिया था–

"भिक्षुओ! बुद्ध तो केवल मार्ग दिखाने के लिये आया था। चलना तो तुमने स्वयं है।"

यह एक अटल सत्य है। यजुर्वेद के एक मन्त्र में प्रभु का यही उपदेश है कि हे जीव। तू स्वयं ही अपनी महिमा को, यश को बढ़ा। **तेरे सत्कर्मों व पुरुषार्थ से, आचरण से तेरा बेड़ा पार होगा।** प्रभु मिलन भी अपनी ही साधना से सम्भव है। प्रभु कोई खिलौना तो है नहीं जो गुरु या पैग़म्बर हमारे हाथ में पकड़वा देगा।

क्या गुरु व्यायाम करेगा तो मैं बलवान् निरोगी हो सकता हूँ? गुरु भक्ति, भजन करेगा तो मैं भक्त बन सकता हूँ? गुरुजी सत्य व ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करें तो मैं ऐसे ही उनकी कृपा से सत्यवादी ब्रह्मचारी बन जाऊँगा? गुरु अपना निज ज्ञान व अनुभव यूँ ही शिष्यों में उंडेल सकता है? कदापि नहीं।

इसी प्रकार गुरु की कृपा से आध्यात्मिक शक्ति नहीं प्राप्त हो सकती। इसके लिये अपना प्रयास चाहिये। यह वैदिक धर्म की एक मूलभूत व विलक्षण शिक्षा है। मतों में ऐसा नहीं है। मैं एक ईश्वर को ही उपास्य मानता हूँ फिर भी धर्मात्मा, मोमिन या मुसलमान नहीं

कहला सकता और न ही मुझे **मुक्ति** व **स्वर्ग** मिल सकता है। क्यों? कारण एक ही है कि मैंने भले ही कुकर्म नहीं किये। मैंने सत्कर्म भी किये परन्तु **मुहम्मद जी को पैग़म्बर नहीं माना।**

मैंने बाईबल के पर्वतीय उपदेशों पर आचरण किया फिर भी मदर टेरेसा तो स्वर्ग में पहुँच गई परन्तु वहाँ प्रवेश पाने वालों की सूची में मेरा नाम कभी नहीं आ सकेगा। कारण? मैंने ईसा को प्रभु का इकलौता पुत्र नहीं माना। अकेले प्रभु को मानने से तो कुछ बनने वाला है नहीं। यह बिचौलियापन वेद को सर्वथा अमान्य है। यह वेद का अन्य मतों से एक मौलिक भेद है।

इस्लाम भी ईश्वरवादी होने की घोषणा करता है और ईसाई मत भी ईश्वरवादी है फिर दोनों में टकराव क्यों है? किस बात पर विवाद है? विवाद है ईसा व मुहम्मद की पैग़म्बरी का। दोनों में से कौन मुक्ति दिला सकता है? यह Mediatorship बिचौलियापन वेद को अमान्य है।

एक और दृष्टि से इस समस्या पर विचार करते हैं। प्रभु दयालु है। कब से? वह कृपालु है। कब से? वह पालक है। कब से? वह न्यायकारी है। कब से? वह कुकर्मों का दण्ड देता है। कब से? वह विधाता है। कब से?

इन सब प्रश्नों का एक ही उत्तर है कि जब से वह प्रभु है अर्थात् अनादि काल से। हम पहले भी बता चुके हैं कि वह प्रभु अनादि काल से स्रष्टा है, स्वामी है, पालक है, संचालक है, न्यायकारी है, दाता है, विधाता है। किसको देता था? वह किसका पालन करता आ रहा है? वह किस पर दया करता आ रहा है? किसको न्याय देता आ रहा है? उत्तर है जीवों को। इस प्रकार जीव भी अनादि सिद्ध हुये। तो क्या ईसा, मूसा व मुहम्मद जी भी अनादि काल से ही मुक्तिदाता या पैग़म्बर हैं? कदापि नहीं। **फिर इनके आगमन से पूर्व ईश्वर व जीवों का सम्बन्ध था या नहीं? कैसे भक्त व भगवान् की उपासना चलती थी? मुक्ति के साधन कोई थे या नहीं?**

लोगों ने भारत में गुरुडम चलाने के लिये कई मनघड़न्त बुद्धि विरुद्ध मन्त्र घड़ लिये यथा यह विषैला भ्रामक प्रचार किया गया कि गुरु ही ब्रह्मा है, गुरु ही विष्णु है और गुरु ही साक्षात् महेश्वर है। ये गुरुओं को प्रसन्न करने वाली या अपने मन को रिझाने वाली अच्छी कल्पना हो सकती है परन्तु, यह कसौटी पर खरा उतरने वाला सत्य नहीं है। इसलिये सत्य की खोज में निकले जिज्ञासुओं को, प्रभु के उपासकों को वैदिक धर्म का अन्य मतों से यह मौलिक भेद समझना होगा कि परमात्मा व आत्मा के बीच में कोई बिचौलिया नहीं है।

स्मरण रखिये! यदि मरा हुआ गुरु व पीर मुक्ति, स्वर्ग दिला सकता है और ईश्वर तक पहुँचा सकता है तो फिर मरे हुये सांप के काटने से भी व्यक्ति मर जाना चाहिये और मरे हुये सैनिकों को रण भूमि में मोर्चों पर आगे भेजकर शत्रु पर विजय पानी चाहिये।

यह दुर्भाग्य ही समझना चाहिये कि आज प्रभु की महिमा, गुणगान व उपासना पर इतना बल नहीं दिया जाता जितना कि गुरुओं, पीरों, व मुक्ति, मोक्ष दिलाने वाले आचार्यों व बोगस योगियों के गुण कीर्तन व बड़ाई करने पर।

साकार-निराकार :
साकार का निराकार पर कभी शासन नहीं होता।

ज्ञान से सान्तता :
सान्तता ज्ञान के साथ बढ़ती है।

ग्यारहवाँ अध्याय

स्वर्ग में कौन? नरक में कौन?

अन्य मतों से वैदिक धर्म का एक मौलिक भेद यह है कि स्वर्ग में कौन जायेगा और नरक में कौन जायेगा। वेदानुसार स्वर्ग व नरक कोई स्थान विशेष नहीं है। सुख विशेष का नाम स्वर्ग है और दुःख विशेष का नाम नरक है। परिवार में परस्पर प्रीति है तो घर स्वर्ग है और यदि कोई किसी के कहने में नहीं, कोई किसी की सुनता नहीं तो घर नरक है। जिस राष्ट्र में भ्रष्टाचार, अनाचार, अनुशासन हीनता है और जहाँ पर लोग परिश्रमी नहीं, कामचोर व आलसी हैं तो ऐसा देश नरक ही तो है। जहाँ परस्पर अविश्वास हो वह परिवार नरक है। यह स्वर्ग नरक की एक मौलिक व्याख्या है। यह ऋषि दयानन्द की एक अद्भुत देन है।

वेद एक अवस्था विशेष को स्वर्ग और नरक मानता है। ये कोई देश विशेष या स्थान विशेष नहीं हैं। मत, पंथों ने यह कल्पना कर रखी है कि स्वर्ग में अनेक प्रकार के भौतिक सुख **प्राप्य** होंगे और नरक में धधकती ज्वाला में जीव सदा के लिये जलते रहेंगे। अब तो सूझ-बूझ वाले ईसाई, मुसलमान व पौराणिक हिन्दू भी इस प्रकार के अंध विश्वासों से मुक्त हो रहे हैं। **मौलाना न्याज़ फ़तेहपुरी उर्दू के एक जाने माने लेखक, कवि व पत्रकार थे।** आपका नाम उर्दू साहित्य के इतिहास में सदा अमर रहेगा। आपने एक बार **'बहिश्त की वास्तविकता'** शीर्षक से एक लम्बा लेख लिखा था। इसमें स्वर्ग, नरक की इस्लामी मान्यता पर तीखे व्यंग्य कसे। **इस मान्यता का माननीय मौलाना ने सर सैय्यद अहमद खाँ से भी कहीं कड़ा खण्डन किया।**

पौराणिक, मुसलमान व ईसाई सभी यह मानते हैं कि उनके मत को मानने वाला व्यक्ति ही स्वर्ग में प्रवेश पायेगा। अन्य सब नरक में फेंके जायेंगे। इस प्रकार से सब मत, पंथों के लोग नरक में ही

तो जायेंगे। कारण यह है कि **जो लोग अपने मतानुसार स्वयं को स्वर्ग का अधिकारी माने बैठे हैं उन्हें अन्य मत वाले नरक में धकेलेंगे।**

महात्मा गांधी की आत्मकथा का अनुवाद एक पूर्व राष्ट्रपति डॉ० ज़ाकिर हुसैन के एक मित्र ने उर्दू में किया है। इस ने सब दिवंगत मुसलमानों के लिये मरहूम (जिस पर अल्लाह की रहमत हो अर्थात् स्वर्गस्थ) शब्द का प्रयोग किया है और प्रत्येक हिन्दू, ईसाई व पारसी नेता के लिये आंजहानी (नरकस्थ) शब्द का प्रयोग किया है। गांधी स्मारक समिति ने ही यह ग्रन्थ छापा है। अनुवादक कांग्रेसी महाशय ने तो लोकमान्य तिलक, फ़ीरोज़शाह मेहता व श्री दादाभाई नोरोजी आदि सबको नरक में पहुँचा दिया। **यदि गांधी जी अपनी मृत्यु की चर्चा कहीं आप ही अपनी आत्मकथा में करवाते या कर जाते तो इस कांग्रेसी मुल्ला ने गांधी जी को भी नरक में पहुँचा देना था।**

मौलाना मुहम्मद अली शौकत अली दो भाई थे। दोनों बहुत बड़े लीडर थे। दोनों गांधी जी के मित्र थे। गांधी जी के जीते जी एक भाई ने गांधी जी को नरक में मकान अलाट कर दिया था। इसका कारण? कारण यही था कि गांधी जी **'कल्मा गो'** मुसमलान नहीं थे।

ऋषि दयानन्द की तो यह घोषणा है कि पापी जहाँ भी हैं और जिस मत में भी हैं, सब नरक में जायेंगे। धर्मात्मा सज्जन सदाचारी सत्कर्मी कोई भी क्यों न हो, किसी भी मत में क्यों न हो सब स्वर्ग में जायेंगे। अर्थात् शुभ कर्म करने वाले, परोपकारी श्रेष्ठ जनों को ईश्वर सुख ही देगा। यह है वैदिक धर्म का अन्य मतों से एक मुख्य मौलिक भेद।

अब पूर्वाग्रह से मुक्त होकर विचारशील लोग अपने हृदय से पूछ कर निर्णय दें कि उनको वेद का सिद्धान्त जँचता है या अवैदिक मतों का? वैदिक धर्म तो श्रेष्ठ आचरण को महत्त्व देता है। यही सुख-दुःख की एक मात्र कसौटी है। सृष्टि नियमों का ध्यान करके ज्ञानपूर्वक किया गया कर्म ही सद्कर्म है। यही श्रेष्ठाचरण है।

मौलिक भेद पर कुछ सम्मतियाँ

1. यशस्वी वेदज्ञ पूज्यपाद पं० धर्मदेव विद्यामार्तण्ड (स्वामी धर्मानन्दजी)

"आपका 7-9-68 का पत्र व पूर्व प्रेषित आपकी दो उत्तम रचनाओं मौलिक भेद और "Fundamentals of Vedic Teachings" की एक-एक प्रति सहित प्राप्त हुआ। तदर्थ धन्यवाद। आपकी दोनों पुस्तकें बहुत अच्छी हैं। मौलिक भेद में आपने मतमतान्तरों से वैदिक धर्म का जो भेद दिखाया है। **वह आपके गम्भीर अध्ययन और मनन को सूचित करता है। जिसे देखकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई।** आर्य जगत् के उत्तम मनीषियों, स्वर्गीय पं० चमूपति जी, मान्य पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय जी, श्री पं० गुरुदत्त जी विद्यार्थी, डॉ० सत्यप्रकाश जी के समुचित, प्रभावशाली उद्धरण स्थान-स्थान पर देकर आपने पुस्तक की उपयोगिता को बढ़ा दिया है।...

...आपकी यह पुस्तक 'मौलिक भेद' बहुत अच्छी लगी। मैं इसका युवक तथा शिक्षित वर्ग में विशेष प्रचार चाहता हूँ। अंग्रेज़ी की "Fundamentals of Vedic Teachings" भी बहुत अच्छी है। बड़ी स्पष्टता से आपने वैदिक मन्तव्यों का प्रतिपादन किया है।"

2. सार्वदेशिक सभा के भूतपूर्व मन्त्री भारत विख्यात वैद्य एवं लेखक **कविराज हरनाम दास लिखते हैं**–

"आपके पुरुषार्थ से आर्यसमाज अपने को धन्य मानता है।"

3. श्री पं० गंगाप्रसाद जी उपाध्याय के विद्वान् सुशिष्य श्री **पं० राधेमोहन जी आर्य**–

"आपकी पुस्तक अभी बड़े मनोयोग पूर्वक आद्योपान्त पढ़ गया।

पूज्य उपाध्याय जी ने पहले भी इसे पढ़ने के लिए कहा था और मुझे इस पर अपनी सम्मति देने के लिए कहा था किन्तु समयाभाव या प्रमादवश इसे सरसरी दृष्टि से पढ़ लिया था किन्तु अब मैंने पढ़ लिया है तो मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई क्योंकि आर्यसमाज में आज किस्से कहानी या वैदिक सिद्धान्तों पर न लिखने वालों का बाहुल्य है किन्तु वैदिक सिद्धान्तों पर सूक्ष्म दृष्टि से यथातथ्य रूप से लेखकों की कमी है। इस स्थिति में आप जैसे युवक के द्वारा सिद्धान्तों पर तथ्यता को दृष्टि में रखते हुए जो 'मौलिक भेद' लिखी गई है वह प्रशंसनीय है। और निराशावादियों के मुँह पर गहरा तमाचा है जो कहते रहते हैं कि आज युवकों की आर्य सिद्धान्तों व धर्म प्रचार की ओर रुचि नहीं है और आर्य जगत् से तत्वदर्शी विद्वान् समाप्त हो गये हैं। मेरी तो दृढ़ आस्था है कि दयानन्द की फुलवारी कभी सूखने नहीं पाएगी और समय-समय पर उद्‌भट विद्वान् आर्यसमाज में जन्म लेते रहेंगे।"

"मैं इसके कई स्थलों को कई-कई बार पढ़ गया। क्योंकि वे इतने मर्मस्पर्शी तथा सुधारात्मक व्यंग्य थे कि जिसे पढ़ने में मज़ा भी आता था।"

"मेरी सम्मति है कि 'मौलिक भेद' में वैदिक एवं अवैदिक सिद्धान्तों की युक्तियुक्त मर्मस्पर्शी व हृदयग्राही समालोचना की गई है। तुलनात्मक विवेचन की शैली रोचक एवं ज्ञानवर्धक है। वैदिक सिद्धान्तों के प्रचार में विशेष सहायक हो सकती है। यदि इसका अंग्रेज़ी में भी अनुवाद हो सके तो उत्तम रहेगा।

4. **श्री स्वामी विद्यानन्द विदेह** के मासिक सविता की सम्मति–

"पुस्तक तर्क-प्रमाण पुरस्सर, प्रखर एवं ओजस्वी मस्तिष्क से प्रसूत तथा मननीय है।"

वर्ष 2017-18 के प्रकाशन

Mother's Gift to the Young *by* **Kanchan Arya Rs. 120.00**

The book is written for the spiritual upliftment and character building of the Youngs. The authoress has explained the truth of the human life in the form of letters from a mother to her children. The mother has tried by all possible means to save and protect the children from physical, spiritual and social downfall.

मैं दयानन्द बोल रहा हूँ डॉ. चन्द्रशेखर लोखण्डे रु.95.00

स्वामीजी द्वारा लिखित संपूर्ण ग्रन्थों एवं जीवन चरितों में से लगभग 500 अमृत तुल्य संवचनों को एक जगह लाने का प्रयास किया गया है। विद्यार्थियों एवं शोधार्थियों के लिए उपयोगी।

अथतो धर्म जिज्ञासा श्री वेद प्रकाश रु. 225.00

में धर्म के विषय में फैली भ्रान्तियों और असमंजस की स्थिति का निराकरण एवं इसके यथार्थ स्वरूप का उद्घाटन आवश्यक है, जिसकी चर्चा इस पुस्तक में तथ्यपरक एवं तार्किक ढंग से की गयी है। भौतिक तथ्यों एवं आँकड़ों का उल्लेख करके विषय को अधिक रोचक एवं प्रामाणिक बनाया गया है।

वैदिक मान्यताओं का वैज्ञानिक एवं व्यावहारिक विवेचनः
डॉ. राजपाल सिंह रु. 70.00

इस पुस्तक में प्रमाण और उसके प्रकार, जीवन के लिए पंचतत्व का महत्व, उर्जा एवं प्रधान प्रकृति (सांख्य दर्शन) में समानता, यज्ञ पर प्रयोग एवं उसकी उपयोगिता, आत्मा का अस्तित्व, उसका अलिंगी गुण, ईश्वर की वैज्ञानिक पुष्टि, साधना हेतु धारणा की आवश्यकता तथा उसके विकल्प, वैदिक काल में नारी का स्थान तथा रामायण एवं महाभारत की घटनाओं पर तर्कसंगत विचार प्रस्तुत किये गये हैं।

The Original Philosopy of Yoga *by* **Dr. Tulsiram Rs. 200.00**

The original philosophy of yoga is revealed in the Vedas. Maharshi Patanjali, through his knowledge and practice, collected the Vedic revelations from the Samhitas and composed them in a systematic treatise which we know today as Yoga Darshan.

Chapter-1 takes care of different kinds of Samadhi: Vitarka, Vichara, Ananda, Asmita, Sabija and Nirbija. Chapter-2 takes care of the human problem of suffering (dukha), which must be eliminated (Heya). Chapter-3 goes into the high-ways and bye-ways of yogic powers, often described as Super-normal, even Super-natural. Chapter-4 describes the psycho-dynamics of living and spiritual realisation and sublimation of the self (the atma).

कुछ अनुपम पुस्तकें पुनः प्रकाशित

स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती कृत

उपनिषद् प्रकाश

पं० इन्द्र विद्यावाचस्पति कृत

अध्यात्म रोगों की चिकित्सा

भारतीय संस्कृति का प्रवाह

पं० शिवशंकर शर्मा काव्यतीर्थ कृत

ओंकार निर्णय

स्वामी ब्रह्ममुनि परिव्राजक कृत

आर्ष योगप्रदीपिका

वेदान्तदर्शन

सांख्यदर्शन

पूज्य महात्मा नारायण स्वामी कृत

आत्मदर्शन

कर्मरहस्य

वेदरहस्य

आचार्य विश्वश्रवाः कृत

यज्ञपद्धति मीमांसा

पं० सुरेशचन्द्र वेदालंकार कृत

ईश्वर का वैदिक स्वरूप

प्रा० राजेन्द्र 'जिज्ञासु' कृत

मौलिक भेद

पं० आत्माराम अमृतसरी कृत

सृष्टि विज्ञान

by Dr. Chiranjeeva Bharaddwaja

Light of Truth

शताब्दी की ओर अग्रसर

सन् 1925 में महर्षि दयानन्द सरस्वती के जन्म को सौ वर्ष पूरे हो चुके थे। इस अवसर पर मथुरा में 'जन्मशताब्दी समारोह' का विश्व स्तर पर आयोजन किया गया। इस समारोह में लाखों की संख्या में लोग मथुरा पहुँचे जो एक अविस्मरणीय आयोजन बन गया।

इस अवसर की महत्ता को समझकर लाला गोविन्दरामजी ने सत्यार्थप्रकाश को प्रकाशित कर सस्ते मूल्य पर प्रसारित करने का संकल्प किया। स्वामी श्रद्धानन्दजी के आशीर्वाद से आपने यह साहसिक पग उठाया और 'गोविन्दराम हासानन्द प्रकाशन' का जन्म हुआ।

वर्ष 2018 में यह प्रकाशन अपने गरिमामयी 93 वर्ष पूरे कर रहा है। आर्य महासम्मेलन-2018 के शुभ अवसर विश्व भर से पधारे विद्वानों, कार्यकर्ताओ, अधिकारियों एंव अथितियों का हार्दिक अभिनन्दन।

वैदिक-ज्ञान-प्रकाश के गरिमापूर्ण 93 वर्ष

संस्थापक
पितामह श्री गोविन्दराम जी

पूर्व संचालक
पिता श्री विजयकुमार जी

अपनी स्थापना से लेकर अभी तक यह संस्था लगभग 3000 पुस्तकों का प्रकाशन कर चुकी है, जिनमें से लगभग 600 पुस्तकें अभी भी उपलब्ध हैं। 100 से अधिक विद्वानों का साहित्य विभिन्न विषयों पर हम प्रकाशित कर चुके हैं तथा अन्य प्रकाशनों का भी साहित्य सभी आयु वर्गों के लिए उपलब्ध रहता है।

गोविन्दराम हासानन्द के संस्थापक पितामह गोविन्दराम जी तथा पिता श्री विजयकुमार जी की स्मृति को शत्-शत् नमन।

-अजय कुमार

अक्टूबर 2018 Registered with Regn. of News Paper for India
वेदप्रकाश R.No. 627/57 Regd. No. DL(DG-11) / 8030/2018-20, U(DGPO) 01/2018-20
Posted at Delhi RMS, Delhi - 110006

आर्य महासम्मेलन-2018 के शुभ अवसर पर प्रकाशित साहित्य

भारतीय संस्कृति का प्रवाहः पं. इन्द्र विद्यावाचस्पति

लेखक ने इस पुस्तक में भारत की संस्कृति के अब तक के जीवन की गाथा सुनाने का यत्न किया है। यद्यपि सदियों से काल चक्र हमारा शत्रु रहा है तो भी हमारी हस्ती नहीं मिटी इसकी तह में कोई बात है। वह बात क्या है? लेखक ने ऐसे प्रश्नों का उत्तर देने का प्रयास किया है।

सृष्टि विज्ञानः पं. आत्माराम अमृतसरी

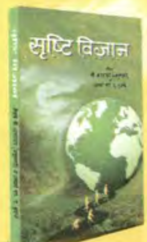

महर्षि दयानन्द ने रुड़की में डारविन के विकासवाद के सिद्धान्त का युक्ति पूर्वक खण्डन किया था। विकासवाद जैसी कल्पना को यूरोप छोड़ चुका है, परन्तु भारत में अभी तक इसकी लकीर पीटी जा रही है। ऐसी विज्ञान-विरुद्ध मिथ्या धारणा के उन्मूलन की दृष्टि से यह पुस्तक लिखी गई है।

ईश्वर का वैदिक स्परूपः पं. सुरेशचन्द्र वेदालंकार

विद्वान् लेखक ने परिश्रमपूर्वक चारों वेदों और उपनिषदों से अनेक मन्त्रों का संग्रह करके ईश्वर, जीव और प्रकृति के स्वरूप का विशद् विवेचन किया है।

मौलिक भेदः प्रा. राजेन्द्र 'जिज्ञासु'

अवैदिक मतों पंथों से वैदिक धर्म के 'मौलिक भेद' नाम की यह लोकप्रिय और मूर्धन्य आर्य विचारकों-विद्वानों द्वारा सराही गई यह पुस्तक धर्म प्रेमी जनता को सप्रम भेंट की जा रही है।

वैदिक धर्म गाईडः श्री मदन रहेजा

लेखक ने वैदिक धर्म की संक्षिप्त जानकारी इस लधु पुस्तक के माध्यम से देने का प्रयास किया है।

अथातो ब्रह्म जिज्ञासा : श्री वेद प्रकाश

वेदों में प्रतिपादित ईश्वर के वास्तविक स्वरूप को हम जान सकें इसी उद्देश्य से यह पुस्तक लिखी गयी है।